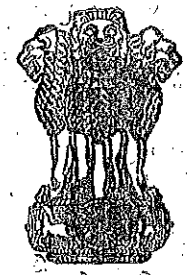

भारत के विधि आयोग

की

विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874

पर

छियासठवीं रिपोर्ट

मई, 1976

पी० बी० गजेन्द्रगड़कर
अध्यक्ष

अ० शा० सं० फा० 2(4)/75–वि०आ०
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110001
तारीख 12 मई, 1976

इस पत्र के साथ आपको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 पर आयोग की छियासठवीं रिपोर्ट भेजते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। 1975 के उत्तरार्ध में आयोग ने यह विषय स्वयं चुना था क्योंकि उसका विचार था कि अन्तराष्ट्रीय महिला वर्ष, 1975 में इस अधिनियम का पुनरीक्षण करना उपयुक्त होगा।

प्रायः जैसा होता है, सुसंगत सामग्री का प्रारंभिक अध्ययन किया गया, उसकी एक प्रारूप रिपोर्ट तैयार की गई तथा उस पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गई। परिणामस्वरूप प्रारूप रिपोर्ट में कुछ परिवर्तन किये गये और उसे अंतिम रूप दिया गया।

आप जानते ही हैं कि वर्तमान अधिनियम, 1878 में पारित किया गया था और यह मुख्य रूप से इससे पूर्व के 1870 के इंगलैंड के कानून पर आधारित है। उसके बाद से, विवाहित स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार के प्रश्न के संबंध में इंगलैंड में और अन्यत्र कानून में काफी विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप विवाहित स्त्रियों के सम्पत्ति संबंधी अधिकार की संकल्पना और उसके स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन इस विषय पर आधुनिक न्याय-शास्त्रीय विचार धारा के अनुरूप है और इससे समाज शास्त्रीय विचारों में परिवर्तन आए हैं। इस विकास को देखते हुए जो इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् एक शताब्दी के दौरान हुआ है, आयोग का यह विचार हुआ कि इस अधिनियम का व्यापक पुनरीक्षण आवश्यक है।

यह तय करने के लिये कि अधिनियम में परिवर्तनों के संबंध में आयोग को क्या सिफारिशें करनी चाहिये, आयोग ने यह आवश्यक समझा कि अधिनियम की पृष्ठभूमि को समझ लिया जाए और इस विषय से संबंधित कामन ला और इंक्विटी (साम्या) के विभिन्न नियमों के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखा जाए।

आयोग ने यह भी समझा कि इस उद्देश्य से कि आयोग इस विषय पर अपनी सिफारिशें तैयार करने से संबंधित समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करके उन्हें तय कर सके, तुलनात्मक सामाग्री का गहराई से अध्ययन करना आवश्यक है। आयोग द्वारा की गई सिफारिशों से आपको स्थिति स्वयं पता चल जाएगी किन्तु मैं समझता हूं कि इस पत्र में उन आमूल परिवर्तनों की, जिनको अधिनियम में करने का हमने सुझाव दिया है, कुछ मोटी-मोटी बातों का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

पुराने कामन ला में यह धारणा थी कि सभी विधिक प्रयोजनों के लिये पत्नी का व्यक्तित्व उसके पति के व्यक्तित्व में समाया हुआ है और यह कि जब तक वैवाहिक जीवन बना रहता है उसकी (पत्नी की) वास्तविक सम्पदा और (कुछ अपवादों को छोड़कर) उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति उसके पति की सम्पत्ति हो जाती है। यह धारणा अब पूरी तरह से लुप्त हो गई है। इसलिये हमने कानून को आधुनिक विधिशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप बनाने के लिये इस संबंध में उपयुक्त सिफारिशें की हैं।

आयोग का यह भी विचार है कि पत्नी का पृथक दायित्व अब केवल सांपत्तिक दायित्व नहीं होना चाहिये बल्कि वह उसके पति से बिल्कुल अलग एक वैयक्तिक दायित्व होना चाहिये। हमारा विचार है कि यह बात न केवल किसी विशिष्ट समुदाय की विवाहित स्त्रियों के, जिनको इस समय यह अधिनियम लागू होता है, संबंध में बल्कि अन्य समुदायों की विवाहित स्त्रियों में भी, विधान बना कर स्पष्ट कर दी जानी चाहिये। संक्षेप में आयोग ने इस दृष्टिकोण से अपनी सिफारिशें की हैं।

अधिनियम की धारा 6 जीवन बीमा की पालिसियों के संबंध में है। निःसंदेह यह उपबंध समाजशास्त्र की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है और इस समय इसका जो रूप है उससे निर्वचन के कुछ कठिन प्रश्न उत्पन्न होते हैं। अतः धारा 6 से जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनकी चर्चा हमारी रिपोर्ट के एक पृथक अध्याय में की गई है जिससे कि आयोग समाज-शास्त्र और न्याय शास्त्र के दृष्टिकोण से अपने विचार प्रकट कर सके।

सितम्बर, 1971 में आयोग के गठन के पश्चात् आयोग सरकार को बाइस बाइस रिपोर्टें (पैंतालीसवी रिपोर्ट से लेकर छियासठवीं रिपोर्ट तक) भेज चुका है और इसमें यह रिपोर्ट भी सम्मिलित है । वर्तमान आयोग का सितम्बर, 1974 में पुनर्गठन किया गया था और उसके पश्चात् इस आयोग ने छह रिपोर्टें भेजी हैं जिनमें यह रिपोर्ट भी सम्मिलित है ।

अन्त में, मैं आपका ध्यान अपनी पैंसठवीं रिपोर्ट भेजते समय किये गए अनुरोध की ओर आकर्षित करना चाहता हूं । मैंने यह सुझाव दिया था और मैं इस सुझाव को फिर से दोहरा देना चाहता हूं कि इस रिपोर्ट के मुद्रण के पश्चात् इस रिपोर्ट की प्रतियां संबंधित शैक्षिक और वृत्तिक संस्थाओं को भेज दी जाएं जिससे कि आयोग द्वारा विचार किये प्रश्नों पर परिचर्चा आरंभ हो सके और इसके परिणामस्वरूप इस रिपोर्ट में आयोग द्वारा की गई सुसंगत सिफारिशों पर सरकार को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता मिल सके । मुझे विश्वास है कि आप मेरी बात के महत्व पर ध्यान देंगे और मेरे सुझाव को स्वीकार करेंगे ।

सादर,

आपका

(पी० बी० गजेन्द्र गड़कर)

माननीय श्री एच० आर० गोखले,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110001

विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 और समान उपबन्धों पर रिपोर्ट

	विषय-वस्तु	पृष्ठ
अध्याय 1	—प्रस्तावना	1
अध्याय 2	—इस विषय पर इंगलैंड की विधि का इतिहास	6
अध्याय 3	—भारत में स्त्रियों की स्थिति—संक्षिप्त ऐतिहासिक पुनर्विलोकन	10
अध्याय 4	—अधिनियम की स्कीम	24
अध्याय 5	—अन्य अधिनियमों में समान उपबन्ध	25
अध्याय 6	—1874 के अधिनियम का विस्तार और लागू होना	30
अध्याय 7	—विवाहित स्त्रियों की मजदूरी और उनके उपार्जन	31
अध्याय 8	—पत्नियों और पतियों द्वारा बीमे	32
अध्याय 9	—विधिक कार्यवाहियां	56
अध्याय 10	—विवाह के बाद के ऋणों के लिये पत्नी का दायित्व	58
अध्याय 11	—विवाह के पूर्व के ऋण	60
अध्याय 12	—पत्नी द्वारा न्यास-भंग या संम्पदा क्षय के लिये पति का दायित्व	61
अध्याय 13	—अन्य विषय	62
अध्याय 14	—1874 के अधिनियम की कुछ धाराओं के सरलीकरण के रूप में सिफारिश किये गये संशोधन	64
अध्याय 15	—अन्य अधिनियमों में संशोधन	66

परिशिष्ट 1	—विवाहित स्त्री सम्पत्ति और प्रकीर्ण उपबंध विधेयक, 1976	70
परिशिष्ट 2	—भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की वर्तमान धाराएं 20 से 22 तक	74
परिशिष्ट 3	—मैरिड वीमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंगलैंड) की धारा 11	75
परिशिष्ट 4	—ला रिफार्म (मैरिड विमेन एंड टार्ट फीजर्स) ऐक्ट, 1935 (इंगलैंड)	76
परिशिष्ट 5	—मैरिड विमेन (रेस्ट्रेन्ट अपान एन्टीसिपेशन) ऐक्ट, 1949 (इंगलैंड)	78
परिशिष्ट 6	—ला रिफार्म (हस्बैण्ड एण्ड वाइफ) ऐक्ट, 1962 (इंगलैंड)	79

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 आज से सौ वर्ष पूर्व पारित किया गया था। इस अधिनियम[1] का उद्देश्य कामन ला के कुछ ऐसे नियमों से, जो समया नुकूल नहीं रह गये थे, और जो भारत में कुछ समुदायों के लोगों पर भी लागू समझे जाते थे, विवाहित स्त्रियों को मुक्ति दिलाना था। यह छोटा सा अधिनियम है जिसमें केवल 10 धाराएं हैं किन्तु, जैसा कि हमारी रिपोर्ट से पता चलेगा, इससे कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठते हैं। रिपोर्ट का विषय-क्षेत्र।

इस अधिनियम के पारित होने के कुछ वर्ष पूर्व भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 4 में यह सिद्धान्त स्थापित किया गया था कि विवाह करने से पति, पत्नी की सम्पत्ति मे कोई अधिकार प्राप्त नहीं करता। कुछ वर्ष पश्चात् विवाहित स्त्रियों के मामले में पूर्व आशा पर अवरोध को मान्यता देने का विधान सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 में अंधिनियमित किया गया। ये विधायी उपबन्ध लगभग एक शताब्दी तक बने रहे और इस दौरान इनसे कुछ समस्याएं और कठिनाइयां पैदा हो गई हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, 1975 के उपलक्ष में विधि आयोग ने यह उपयुक्त समझा कि इन उपबंधों में ऐसे परिवर्तन का, जो उनमें सुधार करने के लिये आवश्यक हों, सुझाव देने की दृष्टि से इन उपबन्धों की जांच करने का काम हाथ में लिया जाए।

1.2. 1874 के अधिनियम और समान उपबन्धों के पुनरीक्षण की आवश्यकता अनेक कारणों से उत्पन्न हुई है। पुनरीक्षण के कारण। संक्षेप में ये कारण इस प्रकार हैं :—

(क) सामाजिक धारणाओं में परिवर्तन।

(ख) अधिनियम के फायदेमंद उपबन्धों को, विशेष रूप से धारा 6 को, लागू करने में अनुभव की गई कठिनाइयां।

(ग) कुछ प्रगट असुगतियों को दूर करने के लिये प्रारूप में सुधार की गुंजाइश।

1.3. 1874 के अधिनियम के अनेक उपबंध अधिकांश भारतीय स्त्रियों को लागू नहीं होते हैं किन्तु एक महत्वपूर्ण धारा अर्थात् धारा 6 उनको लागू होती है। यह धारा कुछ ऐसी व्यवस्थाओं के बारे में है जो पति जीवन बीमा की पालिसियों के संबंध में अपनी पत्नी या बालकों या पत्नी और बालकों दोनों, के फायदे के लिए कर सकता है। इन व्यवस्थाओं का सामाजिक महत्व स्पष्ट है। यह बहुत फायदेमन्द उपबन्ध हैं और इनको बनाकर विधान मंडल ने पत्नी के वित्तीय हितों और परिवार के सम्भर्ता के रूप में पति पर उसके आश्रित होने के प्रति जागरुकता दिखाई है। इस उपबन्ध का उद्देश्य ऐसी व्यवस्थाओं द्वारा प्रस्थापित धनीय सुरक्षा को संरक्षण देना है, जो एक अर्थ में, विवाह द्वारा प्रस्थापित आर्थिक सुरक्षा के बदले के रूप में समझी जाती है। विवाह से पति या पत्नी को एक दूसरे की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं होता किन्तु इससे पति या पत्नी से भावनात्मक और आर्थिक समर्थन की प्रत्याशाएं उत्पन्न होती हैं। विशेष रूप से पत्नी के मामले में ऐसा होता ही है। परिवार आज भी एक आर्थिक इकाई है। धारा 6 का पत्नी और बालकों के आर्थिक कल्याण से गहरा संबंध है और इस धारा में बात का ध्यान रखा गया है तथा इसमें कुछ ऐसे उपबन्ध किए गए हैं जिनका आशय पति द्वारा अपने जीवन बीमा पर प्राप्त होने वाली रकम के व्ययन के सबंध में की गई व्यवस्थाओं को और अधिक प्रभावी बनाना है। 1874 का अधिनियम लागू होना।

1.4. वर्तमान धारा के सिद्धान्त में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है किन्तु ऐसे संशोधनों की अत्यधिक आवश्यकता है जो उस सिद्धान्त को अधिक प्रभावी रूप से क्रियान्वित करे, जो धारा 6 के उपबन्धों का आधार है। धारा 6 के संशोधन की आवश्यकता।

इस संदर्भ में हमने यह उचित समझा है कि धारा 6 की विस्तार पूर्वक जांच की जाए। धारा 6 का व्यावहारिक महत्व तो है ही उसके अलावा उसकी सैद्धान्तिक दृष्टि से भी जांच करनी होगी। क्योंकि यह अनुयोज्य दावा के समनुदेशन की रीति जैसे रुचिकर विषय के संबंध में है। ऐतिहासिक कारणों से, कामन ला में अनुयोज्य दावों के समनुदेशन की स्वतंत्रता के मार्ग में, उसके सारे इतिहास मे, तकनीकी कठिनाइयां बनी रही हैं। यद्यपि आम लोगों के मन में ऐसे समनुदेशनों के प्रति कोई आधारभूत आपत्ति नहीं थी तथापि समनुदेशन का स्वस्थ और कि समान सिद्धान्त कामन ला में विकसित नहीं हो सका और जो सहायता न्यायालय दे सकते थे उसका स्वरूप "प्रच्छन्न और अनियमित" था। धारा 6 ऐसी व्यवस्था के प्रभाव के बारे में निश्चयात्मक आज्ञा देती है।

---

1. इस अधिनियम को संक्षेप में 1874 का अधिनियम कहा जाएगा।
2. बेले "एसाइनमेंट ऑफ डेटस" (1932) 48 एल० क्यू० आर० 547।

पारिवारिक विधि के आर्थिक पहलू।

1.5. जब तक परिवार ठीक से चलता है सम्पत्ति के अधिकार और भरण-पोषण के अधिकार विशुद्ध रूप से शास्त्रीय रुचि के विषय होते हैं। किन्तु पारिवारिक विधि का आर्थिक पहलू उस समय महत्वपूर्ण हो जाता है जब पक्षकारों के जीवित रहते उन का विवाह-विच्छिन्न हो जाता है। ये पहलू पक्षकारों में से किसी एक की मृत्यु हो जाने पर भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं और इसी प्रकार वे पहलू उस समय भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब पति या पत्नी में से कोई दिवालिया हो जाता है। पत्नी की प्रास्थिति का पर्याप्त विकास हो चुका है और अब वह परिवार की एक अनुसेवी सदस्य नहीं रह गई है बल्कि उसका दर्जा परिवार के मुखिया के बराबर का हो गया है, किन्तु कुछ बातों में अभी भी सुधार की आवश्यकता है। साधारणतः पति और पत्नी के संबंधों से सम्पत्ति के अधिकार पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है किन्तु कुछ मामलों में विधि को अद्यतन बनाना ही पड़ता है।

स्त्रियों की हीन स्थिति।

1.6. "स्त्री" शब्द के संबंध में वोल्टेयर ने अपनी पुस्तक "डिक्शनेयर फिलासफिक"[1]। में निश्चय पूर्वक कहा है : "यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि प्रत्येक देश पुरुष स्त्री का स्वामी बन गया है क्यों कि हर चीज शक्ति पर आधारित होती है। प्रायः वह अपने शरीर और मस्तिष्क के कारण भी अत्यन्त श्रेष्ठ होता है.....

.....

स्त्रियां साधारणतः मिलनसार और समझौताकारी प्रकृति की होती हैं। साधारण रूप से कहा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना ही पुरुषों के आचरण को शिष्ट बनाने के निमित्त हुई है।"

आज यह धारणा पुरानी प्रतीत होगी किन्तु पूर्व काल में स्त्री की हीन स्थिति संबंधी यह धारणा पश्चिमी देशों में स्त्रियों को प्रदान की गई कानूनी हैसियत में परिलक्षित होती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में होने वाले समाजिक परिवर्तनों का औद्योगिक सोसाइटियों पर बढ़ता हुआ प्रभाव यह पड़ा कि उन्हें समाज में स्त्रियों की स्थिति को ऐसी रीति से उपान्तरित करना पड़ा जिसने उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। हमारी विधि का झुकाव स्त्रियों को न केवल परिवार में अपितु समाज में भी व्यक्ति के रूप में मानने की ओर है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के संविधान में पुरुष और स्त्रियों को पूर्ण समानता प्रत्यभूत की गई है। वस्तुतः संविधान[2] में राज्य को स्त्रियों के लिए विशेष उपबन्ध करने की अनुज्ञा दी गई है। ऐसे कानूनी उपबंध जिनसे इस रिपोर्ट का संबंध है, स्त्री-पुरुष की समानता की प्रकृति का निदर्शन करते हैं। किन्तु जैसा कि हम कह चुके हैं[3] इन उपबन्धों को अद्यतन बनाए जाने की आवश्यकता है।

धारा 7 को व्यापक बनाने की आवश्यकता।

1.7. विद्यमान उपबन्धों से सीधे सम्बद्ध प्रश्नों के अतिरिक्त दो बातों ऐसी हैं जिनके बारे में हम, इस अधिनियम की धारा 7 की परिधि और उसके प्रभाव को व्यापक बनाने की दृष्टि से सिफारिश करने की प्रस्थापना करते हैं। ये सिफारिशें करने में हमारा उद्देश्य यह है कि कानून में उपबन्ध करके यह स्पष्ट कर दिया जाए कि हमारे देश की सभी स्त्रियां, चाहे वे किसी भी धर्म की अनुयायी हों, संविदाओं, अपकृत्यों के अधीन या अन्यथा उत्पन्न होने वाले दावों की बाबत वाद ला सकती हैं और उन पर ऐसा वाद लाया जा सकता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व हमने समस्या की गहराई से परीक्षा की है, और जैसा कि इस रिपोर्ट के सुसंगत भाग में की गई चर्चा से स्पष्ट हो जाएगा[4]। हमने इस प्रश्न से संबंधित महत्वपूर्ण न्यायिक विनिश्चयों पर सावधानी पूर्वक विचार किया है।

कुछ समुदायों के व्यक्तियों को लागू होने वाली इंगलैंड की विधि।

1.7 क. अब हम संक्षेप में उस पृष्ठभूमि का उल्लेख करेंगे जिसके परिप्रेक्ष्य में 1874 का अधिनियम और अन्य समान उपबंध अधिनियमित किए गए। जनवरी, 1866 के पूर्व भारत में ऐसे व्यक्तियों को जो न हिन्दू, न मुसलमान, न बौद्ध न सिख और न जैन थे, वैयक्तिक प्रास्थिति से सम्बन्द्ध विषयों में इंगलैड का कामन ला लागू था। हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, सिख और जैन अपनी स्वीय विधि द्वारा शासित होते थे। अपनी स्वीय विधि न होने के कारण जिन व्यक्तियों को इंगलैण्ड का कामन ला लागू था उनमें प्रमुख रूप से योरोपीय और भारतीय ईसाई, यहूदी, अर्मीनियन और पारसी समुदाय सम्मिलित थे। तदनुसार समुदायों की महिलाओं को साधारणतः वे ही निर्बन्धन लागू होते थे जो सम्पत्ति के कब्जे और अन्य संक्रामण के संबंध में इंगलैड की महिला को लागू थे। इस सम्बन्ध में 1866 के पहले स्थिति इस प्रकार थी :

---

1. वोल्टयेर, डिक्शनेयर फिलासफिक।
2. आगामी अध्याय 3 देखिए।
3. पूर्वगामी पैरा 1.5 देखिए।
4. आगामी अध्याय 4 देखिए।
5. पारुक, इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट (1966) पृष्ठ 33

(क) जहां तक "स्थावर सम्पत्ति" का संबंध है, पति, पत्नी की सम्पत्ति में विवाह द्वारा हित अर्जित करता था और विवाह की स्थिति बने रहने के दौरान पत्नी, पति की सहमति के बिना उस सम्पत्ति का अन्य संक्रामण नहीं कर सकती थी। यदि पत्नी संतान छोड़कर मर जाती थी तो कुछ परिसीमाओं[1] के अधीन रहते हुए पति सौजन्यता के नाते अभिधारी हो जाता था। वास्तव में ऐसा समझा जाता[1] है कि जनवरी, 1866 के पूर्व, अर्थात् भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 4 के अधिनियम होने के पूर्व पारसी विवाहित स्त्री द्वारा सम्पत्ति हस्तांतर vi पत्र में पति को अन्य संक्रामण में अपनी सहमति देने के प्रयोजन के लिए एक पक्षकार माना जाता था। ऐसा इसलिए था क्योंकि एक कानूनी उपबंध[2] के द्वारा यह व्यवस्था थी कि विवाहित स्त्री को अपनी सम्पदा का व्ययन ऐसे विलेख द्वारा **जो उसके पति की सहमति से अभिस्वीकृत किया गया हो** करने की शक्ति प्राप्त थी और यह उपबंध किया गया था कि कोई भी विलेख तब तक विधिमान्य नहीं होगा जब तक उसमें उसके पति की सहमति न हो अथवा यदि पति निःशक्त हो तो जब तक कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश के समक्ष ऐसा विलेख अभिस्वीकृत न किया गया हो।

(ख) जहां तक पत्नी की जंगम सम्पत्ति का संबंध है, पति, उस जंगम सम्पत्ति में, जो पत्नी के कब्जे में हो, विवाह के द्वारा निहित हित अर्जित कर लेता था और इसके अतरिक्त वह पत्नी के पर्सनल चोजेज इन एक्शन का कब्जा प्राप्त करने का अधिकार भी अर्जित कर लेता था।

1.8. पत्नी की ये निर्योग्यताएं भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 4 को अधिनियमित करके समाप्त कर दी गई थीं। बाद में यह धारा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 20 द्वारा प्रतिस्थापित[3] की गई थी। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 4।

जहां तक हिन्दुओं, मुसलमानों और ऊपर वर्णित अन्य समुदायों का संबंध है, यह उपयुक्त नहीं समझा गया था कि इस विषय पर विधान बना कर कार्रवाई की जाए क्योंकि वे अपनी स्वीय विधि द्वारा शासित होते हैं। इसीलिए विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 2 द्वारा उन समुदायों को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा 4 के प्रवर्तन से अपवर्जित कर दिया गया। यह अपवर्जन भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 20 (2) (ख) में पुनः अधिनियमित किया गया है। परिणामस्वरूप भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 393 (नवीं) अनुसूची ने विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 2 को निरसित कर दिया है।

1.9. उस विधेयक के, जिसने बाद में विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 का रूप लिया साथ उपाबद्ध उद्देश्यों उद्देश्य और कारणों के कथन[3] में उद्देश्य इस प्रकार बताया गया है :

"भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम (1865 का 10) की धारा 4 में यह घोषणा की गई है कि कोई भी व्यक्ति विवाह द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति की संपत्ति में, जिसके साथ वह विवाह करता है या करती है, कोई हित प्राप्त नहीं करेगा। किन्तु यह धारा 1 जनवरी, 1866 से पहले हुए विवाहों को लागू नहीं होती और ऐसे व्यक्तियों के मामले में जिसका विवाह उस दिन के बाद हुआ है" यह अधिनियम पति को विवाह से पूर्व उसकी पत्नी द्वारा लिए गए ऋणों के दायित्व से संरक्षा प्रदान नहीं करता है और न यह अधिनियम ऐसी पत्नियों द्वारा या उनके विरुद्ध दावों के प्रवृत्त किये जाने के लिए स्पष्ट रूप से उपबन्ध करता है।

"वर्तमान विधेयक के उद्देश्य ये हैं अर्थात् पहला, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 4 द्वारा (जहां तक भावी मजदूरी और उपार्जनों तथा बीमा पालिसियों का संबंध है) पत्नियों को प्रदत्त संरक्षण, 1 जनवरी, 1866 से पहले विवाहित स्त्रियों को देना, दूसरा--यह घोषणा करना कि विवाहित स्त्री किसी ऐसे संपत्ति के लिए जो उत्तराधिकार अधिनियम या प्रस्तावित अधिनियम के बल से उसकी पृथक संपत्ति है, अपने नाम से वाद ला सकती है, तीसरा--ऐसे पत्नी के पति को, जिसका विवाह 31 दिसम्बर, 1865 के बाद हुआ है, उस पत्नी के विवाह पूर्व ऋणों से मुक्त करना, और अन्ततः यह घोषणा करना कि ऐसा व्यक्ति जो (अपने पति के अभिकर्ता के रूप में) किसी पत्नी के साथ कोई संविदा करता है, उस पर वाद लाने का, उसकी पृथक संपत्ति के विस्तार तक और उसके विरुद्ध ऐसे वसूली करने का, जो वह तब कर सकता था यदि वह अविवाहित होती, हकदार होगा।"

---

1. पारूक, इण्डियन सक्सेसन ऐक्ट (1966) पृष्ठ 33।
2. 1854 के अधिनियम 31 (कन्वेएन्स ऑफ लैण्ड ऐक्ट, 1854) की धारा 3, जिसे निरसन और संशोधन अधिनियम, 1852 का 48, द्वारा निरसित कर दिया गया।
3. आगामी पैरा 5.2 देखिए।
4. भारत का राजपत्र, 1873, भाग V, पृष्ठ 457।

कामन ला के नियमों में साम्यापूर्ण हस्तक्षेप और इंगलैंड में उसके बाद हुआ विकास।

1.10. इस संबंध में हम इंगलैण्ड में हुए विकास का बहुत संक्षेप में उल्लेख करेंगे[1]।

(क) इंगलैण्ड में, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक, विवाहित स्त्री की उन निर्बंधनों से क्रमिक मुक्ति, जो उसकी स्थावर और वैयक्तिक संपत्ति धारण करने और व्ययन करने की क्षमता पर कामन ला द्वारा अधिरोपित किए गए थे केवल साम्यापूर्ण हस्तक्षेप का ही परिणाम था। काम न ला के अन्तर्गत पत्नी की जंगम वस्तुएं पति की पूर्ण संपत्ति बन जाती थी। उसे पत्नी के चोजेज इन एक्शन को अपने कब्जे में ले लेने की शक्ति भी थी, जब कि संतान का जन्म होने पर[1] वह विरासत की ऐसी वर्तमान सम्पदा के जीवन पर्यंत्त कब्जे का उपयोग "सौजन्यता के अभिधारी के रूप में करता था जो उसकी पत्नी धारण करती हो।

(ख) एलिजाबेथ के शासन काल के बाद से[2] चांसरी न्यायालय ने धीरे-धीरे विवाहित स्त्री की पृथक संपदा के सिद्धान्त का विकास किया, यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि रेस्टोरेशन से पूर्व यह सिद्धान्त स्थावर संपत्ति पर लागू नहीं किया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसरण में चांसरी न्यायालय ने यह स्थापित किया कि जहां कहीं किसी विवाहित स्त्री के पृथक उपयोग के लिए संपत्ति न्यासियों को दी गई हो, वह (विवाहित स्त्री) ऐसी संपत्ति को, अपने पति के हस्तक्षेप से मुक्त रूप में, साया (ईक्विटी) के आधार पर धारण कर सकती थी और उसका व्ययन कर सकती थी, और ऐसी सम्पत्ति पति के ऋणों और बाध्यताओं से प्रभावी रूप में संरक्षित थी।

अन्ततः यह तय किया गया कि जहां दाता ने यह स्पष्ट आशय व्यक्त किया हो कि संपत्ति विवाहित स्त्री के पृथक उपयोग के लिए है वहां यह बात प्रभावी होनी चाहिए चाहे न्यासियों की नियुक्ति की गई हो अथवा नहीं, क्योंकि अन्ततः न्यास स्वयं पति पर अधिरोपित हो जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि जब तक विधानमंण्डल ने विवाहित स्त्री को उसे पति से वित्तीय स्वतंत्रता प्रदान नहीं की थी तब तक अन्तिम रूप से स्थापित परम्परा यह थी कि उसे वैयक्तिक स्वतंत्रता का समान अधिकार प्राप्त था।

आर० बनाम जैक्सन[3] वाले मामले में पत्नी ने पति के विरुद्ध बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए आवेदन किया था। और यह अभिधारित किया गया कि यह कोई प्रतिरक्षा नहीं है कि उसका पति उसको दाम्पत्य के अधिकार के प्रयोग तक ही सीमित रख रहा है। तभी इस धारणा का कि पत्नी एक जंगम-वस्तु है, अन्त हुआ।

(ग) पृथक संपत्ति के सिद्धान्त में और विकास हुआ था लार्ड थार्लो ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त में "प्रत्याशी पर अवरोध" (रेस्ट्रेन्ट आन एन्टीसिपेशन) खण्ड तैयार किया, जिसका उद्देश्य पत्नी की, अपने संपत्ति के फायदाप्रद उपभोग को अपने पति को अभ्यर्पित करने की मांगों (या ऐसा करने के अपने स्वाभाविक रुझान) से संरक्षा करना था। इस खण्ड ने पूंजी या संपत्ति की आय (या दोनों) को अन्य संक्रमण या प्रत्याशा के अयोग्य तब तक के लिए बना दिया जब तक वह (स्त्री) पति आश्रय में रहती है, और इस खण्ड की प्रभावशीलता को लार्ड एंल्डन के समक्ष जैक्सन बनाम हौब हाउस[4] के मामले में अन्तिम रूप से स्थापित हुई।

(घ) उन्नीसवीं शताब्दी के कानूनों ने जिसका प्रयोजन 1925 के संपत्ति विधान में एक कदम आगे ले जाया गया था, अब विधि के अन्तर्गत विवाहित स्त्री को पूर्ण संपत्ति अधिकारों के उपभोग की अनुज्ञा दे दी है। और इसलिए उन कानूनों ने साम्या के एक विशिष्ट परिणाम के महत्व को कम कर दिया है और यह न्यास की आधुनिक विधि के विकास से ही संभव हुआ है।

(ङ) आधुनिक सामाजिक परिस्थितियों में विवाहित स्त्री को उसके पति के मनसूबों से रक्षा करने की आवश्यकता लगभग लुप्त हो गई है, और विभिन्न अवसरों पर प्रत्याशी पर से अवरोधों को हटाने के लिए बनाए गए कानूनी उपबंधों के होते हुए भी विवाहित स्त्री के लेनदारों के दावों के प्रवर्तन के मार्ग में एक गम्भीर अड़चन बनी रही। अतः ला रिफार्म्स (मैरिड वूमैन एण्ड टार्ट फीजर्स) ऐक्ट, 1935 ने विवाहित स्त्री की पृथक संपत्ति, समाप्त करके उसे अविवाहित स्त्री की स्थिति में रख दिया और भावी प्रत्याशा पर अवरोध लगाए जाने को वस्तुतः प्रतिषिद्ध कर दिया।

(च) मैरिड वूमेन (रैस्ट्रेन्ट अपान एन्टिसिपेशन) ऐक्ट, 1949 द्वारा सभी विद्यमान अवरोधों को समाप्त कर लिया गया। उस ऐक्ट की धारा 1 (1) में यह उपबंध है कि प्रत्याशा या अन्यसंक्रामण पर ऐसा निर्बंधन जो स्त्री द्वारा किसी सम्पत्ति के उपभोग से सम्बद्ध या सम्बद्ध होने के लिए तात्पर्यित है, और जो किसी पुरुष द्वारा उस सम्पत्ति के उपभोग से सम्बन्द्ध नहीं किया जा सकता हो इस ऐक्ट के पारित होने के बाद निष्प्रभाव होगा।

---

1. विस्तृत चर्चा के लिए आगामी अध्याय 2 देखिए।
2. सैंकी ब० गोल्डिंग (1579), कैरी 86, गोर्ज्स ब० चांसी, (1639) 7 रिप० चा० 125; डरे ब० शूट (1663) चा० 21 में 1 मामला; काटन ब० काटन, (1960) 2 बी० आर० एन० 290।
3. आर० बनाम जैक्सन, (1891) 1 क्यू० बी० 671 (कोर्ट ऑफ अपील)।
4. जैक्सन बनाम हौब हाउस, (1817) 2 मर० 483।

1.11. इस प्रकार इंगलैण्ड में इस समय स्थिति यह है कि विवाह हो जाने पर पति और पत्नी ऐसी संपत्ति के अलग-अलग स्वामी बने रहते हैं जो विवाह के पूर्व उनकी थी। वह संपत्ति जो विवाहित अवस्था के दौरान पति-पत्नी में से किसी एक ने अर्जित की हो, अर्जित करने वाले व्यक्ति की बनी रहती है। संक्षेप में, विवाह से कोई सम्पत्ति अधिकार सृजित नहीं होता और न इससे सम्पत्ति के संबंध में कोई निर्योग्यता सृजित होती है। इंगलैंड में वर्तमान स्थिति।

1.12. भारत में, 1874 का अधिनियम और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 के उपबंध सही अर्थों में, विवाहित स्त्री की संपत्ति के संबंध में, उन्नीसवीं शताब्दी में मूलभूत सुधार थे। जो विधिक-युक्ति प्रयोग में लाई गई थी वह निस्संदेह एक साम्यापूर्ण संकल्पना पर, अर्थात् पत्नी की "पृथक संपत्ति" के सिद्धांत पर आधारित थी। किन्तु उस युक्ति से काम चल गया। 1874 के अधिनियम ने प्रत्याशा पर अवरोध के सिद्धान्त को समाप्त नहीं किया। वास्तव में संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 के कारण अब भी कुछ समुदायों के लिए स्त्री को उसके संबंध में संव्यवहार करने से रोकना संभव है जबकि विवाहित पुरुष पर वैसे ही निर्बंधन अधिरोपित नहीं किए जा सकते। किसी विवाहित पुरुष को अन्तरित संपत्ति के संबंध में अन्य संक्रामण पर पूर्ण अवरोध नहीं लगाया जा सकता किन्तु विनिर्दिष्ट समुदायों को विवाहित स्त्री को अन्तरित संपत्ति की दशा में ऐसा निर्बंधन लगाया जा सकता है। भारत में स्थिति।

संक्षेप में, इस अधिनियम की यही पृष्ठ भूमि है।

अध्याय 2

इस विषय पर इंगलैण्ड की विधि का इतिहास

प्रस्तावना।

2.1. इस अध्याय में, हम इस विषय पर इंगलैण्ड की विधि के विकास का संक्षेप में वर्णन करेंगे। यह केवल बौद्धिक रुचि का विषय नहीं है क्योंकि यदि उस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखा जाए जिसमें 1874 का अधिनियम पारित किया गया था तो उस अधिनियम के बहुत से उपबन्धों को भली प्रकार समझा जा सकता है। इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि इसकी पृष्ठभूमि मुख्य रूप से इंगलैण्ड की असांविधिक विधि[1] थी।

सम्पत्ति।

2.2. विवाहित व्यक्तियों की संपत्ति[2] के संबंध में कामन लॉ का मुख्य सिद्धान्त यह था कि विवाह के कारण न तो कोई स्त्री ऐसी संपत्ति से वंचित होती है जो पहले से उसकी है और न उससे उसके संपत्ति अर्जित करने के अधिकार पर प्रभाव पड़ता है किन्तु उससे पति को कुछ मूल्यवान अधिकार प्राप्त होते हैं जिनके परिणाम महत्वपूर्ण हैं। विधान द्वारा इस स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन किया गया। यह विधान अधिकांशतः "विवाहित स्त्री संपत्ति अधिनियम" के नाम से या बहुत कुछ उससे मिलते-जुलते नाम से अधिनियमित किया गया था।

विवाहित स्त्री की संपत्ति-इंगलैण्ड के कानून।

2.3. जहां तक विवाहित स्त्री की सम्पत्ति[3] विषयक विधान का संबंध है, इंगलैण्ड के महत्वपूर्ण ऐक्ट 1857, 1870, 1882 और 1935 के ऐक्ट थे। मैट्रिमोनियल काजेज ऐक्ट, 1857 की धारा 25 में उक्त उपबंध था कि जब तक न्यायिक पृथक्करण प्रवर्तन में रहता है तब तक पत्नी को, ऐसी संपत्ति के बारे में जो उसे अर्जित करनी चाहिए, अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) समझा जाएगा। दूसरी बात यह है कि उसी ऐक्ट की धारा 21 में यह उपबन्ध था यदि किसी पत्नी का परित्याग कर दिया गया हो तो वह संरक्षण आदेश प्राप्त कर सकती है जिसका प्रभाव किसी ऐसी संपत्ति और उपार्जनों को जिसकी हकदार वह (पत्नी) परित्यजन के बाद हुई हो, पति और पत्नी के लेनदारों द्वारा अभिग्रहण से संरक्षा प्रदान करना और उन्हें उसमें (पत्नी में) ऐसे निहित करना था मानो वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) हो। ये दो उपबन्ध कामन लॉ के उस नियम को उपान्तरित करते हैं जिसका हमने ऊपर उल्लेख[4] किया है।

मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1870 ने यह उपबन्ध करके कि उस ऐक्ट में विनिर्दिष्ट कुछ मामलों में पत्नी द्वारा अर्जित संपत्ति की बाबत यह समझा जाएगा कि वह उसके (पत्नी) के पृथक् उपयोग के लिए धारित है, कामन लॉ नियम में एक और अपवाद जोड़ दिया। इस प्रकार विनिर्दिष्ट महत्वपूर्ण सम्पत्ति उसके उपार्जन, बचत बैंकों में निक्षेप, स्टाक और शेयर और बहुत ही सीमित परिस्थितियों में, वसीयत न होने की दशा में उसको न्यागत होने वाली संपत्ति थी। यह अधिनियम मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 द्वारा निरसित हो गया जिसके संबंध में आगे चर्चा की गई है।

1882 और 1935 के ऐक्ट--संपत्ति के संबंध में उपबन्ध।

2.4. मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 में यह उपबन्ध[5] था कि: (क) 1882 के बाद विवाह करने वाली स्त्री को, ऐसी सभी संपत्ति को अपनी पृथक संपत्ति के रूप में अभिधारित करने का हक होगा जिसकी स्वामिनी वह विवाह के समय थी, और (ख) जब कभी उसका विवाह हो जाए तब 1882 के बाद विवाहित स्त्री द्वारा अर्जित कोई संपत्ति उसके द्वारा उसी प्रकार से अभिधारित की जाएगी[6]। यह भी अधिनियमित किया गया कि "विवाहित स्त्री किसी न्यासी के हस्तक्षेप के बिना, किसी भू-सम्पत्ति या वैयक्तिक संपत्ति को अपनी पृथक सम्पत्ति के रूप में उसी रीति में अर्जित कर सकेगी, धारण कर सकेगी और विल द्वारा या अन्यथा उसका व्ययन कर सकेगी मानो वह "अविवाहित स्त्री"[7] (फेमी सोल) हो।

उसमें यह भी उपबन्ध था कि प्रत्याशा पर अवरोध संबंधी विधि अप्रभावित रहनी चाहिए[8]।

अब विवाहित व्यक्ति के लिए अपनी पत्नी की ऐसी संपत्ति में जो उसे वैध विवाह में प्राप्त हो विधि के प्रवर्तन द्वारा कोई और हित अर्जित करना असंभव हो गया[9]।

---

1. पूर्वगामी पैरा 1.9 से 1.12 तक देखिए।
2. विस्तृत चर्चा के लिए आगामी पैरा 2.10 देखिए।
3. ऐसे कुछ ऐक्टों के लिए परिशिष्ट 3 से 5 तक देखिए।
4. पूर्वगामी पैरा 2.2।
5. परिशिष्ट 3।
6. धारा 2 और 5
7. धारा 1(1)।
8. धारा 9।
9. परन्तु विवाहित स्त्री को अभी भी तब तक दिवालिया नहीं बनाया जा सकता था जब तक कि वह अपने पति से अलग रूप में कोई व्यापार करते हुए धारा 1(5) के अभिव्यक्त उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं आती हो।

यहां पर 1882 के ऐक्ट के अन्य उपबन्धों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। उन उपबन्धों में महत्वपूर्ण उपबंध है–संविदा, अपकृत्य और अपराधिक विधि, शोधन, अक्षमता के दावों, पति/पत्नी या संतान के पक्ष में बीमा पालिसियों और पति-पत्नी के बीच पैदा होने वाले संपत्ति संबंधी विवाद में पति-पत्नी का दायित्व[1]।

1935 का ऐक्ट–सम्पत्ति के संबंध में उपबन्ध।

2.5. दूसरा महत्वपूर्ण ऐक्ट ला रिफार्म्स (मैरीड वूमन एण्ड टार्टफीजर्स) ऐक्ट, 1935 है। 1935 तक प्रायः विवाहित स्त्रियों की सारी संपत्ति उन्हीं के स्वामित्व में पृथक संपत्ति के रूप में रहती थी। इसलिए 'पृथक संपत्ति' की बात कहना एक विसंगति सी होती जा रही थी क्योंकि विवाहित स्त्री प्रायः सभी मामलों में पुरुष या अविवाहित स्त्री के समान संपत्ति धारण और व्ययन कर सकती थी। इसी स्थिति के कारण विधान मण्डल ने, लॉ रिफार्म्स (मैरीड वूमन एण्ड टार्ट-फीजर्स) ऐक्ट, 1935 में पृथक सम्पदा की संकल्पना को समाप्त कर दिया और पत्नी को वही अधिकार और शक्तियां दे दीं जो पूर्ण क्षमता वाले दूसरे व्यक्तियों को पहले से ही प्राप्त थीं। सुसंगत उपबन्ध इस प्रकार था[2]:

"..... विवाहित स्त्री किसी भी संपत्ति का सभी प्रकार से अर्जन, धारण और व्ययन कर सकेगी मानो वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) हो।"

"..... सभी संपत्ति जो—

(क) इस ऐक्ट के पारित होने के ठीक पूर्व किसी विवाहित स्त्री की पृथक संपत्ति थी या साम्या के आधार पर उसके पृथक उपयोग के लिए धारित थी; या

(ख) इस ऐक्ट के पारित होने के बाद, विवाहित स्त्री के विवाह के समय उसकी है; या

(ग) इस ऐक्ट के पारित होने के बाद विवाहित स्त्री द्वारा अर्जित की जाती है या उसको न्यागत होती है,

सभी प्रकार से उसकी सम्पत्ति बनी रहेगी मानो वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) है, और तद्नुसार उसका व्ययन किया जा सकेगा।"

उस ऐक्ट ने प्रत्याशा पर विद्यमान अवरोध को अछूता छोड़ दिया[3]। किन्तु इससे ऐसा अवरोध समाप्त हो गया है क्योंकि इसने 1935 के बाद निष्पादित लिखत में, और 1935 के बाद मरने वाले किसी व्यक्ति की विल में (चाहे वह विल 1936 से पहले निष्पादित की गई हो) प्रत्याशा पर किसी भी अवरोध के प्रयतित अधिरोपण को शून्य कर दिया[4]।

प्रत्याशा पर अवरोध।

2.6. मैरीड विमेन्स (रेस्ट्रेन्ट अपान एन्टिसिपेशन) ऐक्ट, 1949 ने प्रत्याशा पर अवरोधों की वैधता को पूर्णतः समाप्त कर दिया[5]। 1882 में, स्पष्ट रूप से यह आवश्यक हो गया था कि विवाहित स्त्री की संपत्ति की संरक्षा की जाए, किन्तु इस अवरोध को 20वीं शताब्दी के मध्य में, जब ऐसे अवरोध का कोई उपयोगी प्रयोजन नहीं रह गया बल्कि वह पत्नी की अन्य संक्रमण की शक्ति पर अनुचित बंधन मात्र रह गया, न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता था।

2.7. हमने अभी तक संपत्ति के अधिकारों की सामान्य रूप से चर्चा की है। जहां तक संविदाओं का संबंध है, संविदाएं। कामन लॉ[6] में कोई भी विवाहित स्त्री किसी भी प्रकार की संविदा नहीं कर सकती थी, और इसलिए वह पति या किसी अन्य व्यक्ति के साथ बाध्यकर करार नहीं कर सकती थी। इस साधारण नियम के कुछ अपवाद थे, जो अब महत्वपूर्ण नहीं हैं. इसके अतिरिक्त, पत्नी द्वारा की गई सभी संविदाओं का फायदा, विवाह से पति में स्वतः निहित हो जाता था, और विवाहित रहने के दौरान पति और पत्नी, दोनों पर वाद लाया जा सकता था। ईक्विटी में, पत्नी संविदा करके किसी भी पृथक संपत्ति को प्रभावी रूप से आबद्ध कर सकती थी अर्थात् सम्पत्ति की सीमा तक; किन्तु वह अपने को वैयक्तिक रूप से दायी नहीं बना सकती थी[7]।

---

1. आगामी पैरा 2.7 से 2.10 तक देखिए।
2. 1935 के ऐक्ट की धारा 1(ए) और 2(1) (परिशिष्ट 4)।
3. धारा 2(1) (परिशिष्ट 4)।
4. धारा 2(2), 3 और परिशिष्ट 4।
5. परिशिष्ट 5।
6. आगामी पैरा 2.10 देखिए।
7. पोलक, कान्ट्रेक्ट्स, (20वां संस्करण), पृ० 557—561।

संविदाओं के बारे में कानूनी उपबन्ध–1857 में 1870 और 1874 के अधिनियम।

2.8. संविदाओं के बारे में कामन ला के उक्त सिद्धान्त[1] का, इंगलैण्ड में पहला कानूनी अधिक्रमण मैट्रीमोनियल काज़ेज ऐक्ट, 1857 द्वारा किया गया था। उस ऐक्ट की धारा 26 में यह उपबन्ध था कि जब तक न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रवर्तन में रहती है तब तक किसी भी विवाहित स्त्री को, अनेक प्रयोजनों के लिए, अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) समझा जा सकता है और ऐसे प्रयोजनों में संविदाएं करना और उनका प्रवर्तन भी सम्मिलित है। मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1870 ने (धारा 1 से 11 द्वारा) अधिनियमित किया था कि विवाहित स्त्री की मजदूरी और उसके उपार्जनों को उसकी पृथक संपत्ति के रूप में समझा जाना चाहिए, और उस ऐक्ट ने, (धारा 12 द्वारा) उसको उन चीजों की वसूली के लिए अपने नाम में वाद लाने के लिए शक्ति प्रदान की। 1870 के अधिनियम ने कामन ला का यह नियम भी समाप्त कर दिया कि पति अपनी पत्नी की विवाहपूर्व संविदाओं के लिए दायी होगा किन्तु इससे कुछ विसंगतियां पैदा हो गईं।

बाद में मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट (1870), अमेण्डमेण्ट ऐक्ट, 1874 द्वारा 1870 के ऐक्ट के इस भाग के स्थान पर एक उपबन्ध रखा गया जिससे पति का अपनी पत्नी की विवाहपूर्व संविदाओं के लिए दायित्व पत्नी की उतनी सम्पत्ति के मूल्य तक सीमित कर दिया गया जितनी उस समय की विधि के अधीन किए गए विवाह के आधार पर पति में निहित हुई हो।

1882 का ऐक्ट–संविदा संबंधी उपबंध।

2.8क. मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 में विवाहित स्त्री की पृथक् संपत्ति के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण उपबन्ध किए[2] थे, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है[3]। (मैरीड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1892 द्वारा यथासंशोधित) उस ऐक्ट ने विवाहित स्त्री को संविदा कर सकने की पूर्ण क्षमता भी प्रदान की किन्तु इन ऐक्टों ने भी उसे व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं बनाया। अन्ततः 1882 के ऐक्ट की, धारा 14 में यह अधिनियमित किया गया था कि पति अपनी पत्नी के विवाह पूर्व ऋणों और संविदाओं के लिए पत्नी की केवल उतनी संपत्ति तक दायी होगा जितनी उसने (पति ने) अर्जित की हो या जिसके लिए वह हकदार हो गया हो। यह इंगलैण्ड के 1874 के ऐक्ट[3] के सिद्धान्त को कायम रखना है।

1935 का ऐक्ट–संविदाओं के बारे में उपबन्ध।

2.9. संविदाओं के क्षेत्र में एक बड़ा सुधार 1935 के ला रिफार्म (मैरिड वीमेन एण्ड टार्टफीजर्स) ऐक्ट, 1935 द्वारा किया गया था। उस ऐक्ट की धारा 1 में यह उपबन्ध है[4] कि विवाहित स्त्री किसी संविदा, ऋण या बाध्यता के बारे में अपने को दायी बना सकती है तथा संविदा के लिए वह वाद ला सकती है या उस पर वाद लाया जा सकता है और सभी प्रकार से वह शोधन अक्षमता विधि और निर्णय तथा आदेशों के अधीन रहेगी मानो वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) हो। इस ऐक्ट ने पृथक् सम्पदा की संकल्पना को भी समाप्त कर दिया और यह विवाहित स्त्री को सभी प्रकार से अपनी संपत्ति को ऐसे धारण करने के लिए समर्थ बनाता है मानों वे विवाहित स्त्री (फेमी सोल) हों। अन्ततः, इस ऐक्ट ने पत्नी को उन संविदाओं के लिए जो उसने विवाह के पूर्व की थीं, पति के दायित्व को समाप्त कर दिया। इस का कारण यह है कि पति विवाह द्वारा पत्नी की ऐसी कोई सम्पत्ति अर्जित नहीं करता है जिससे वह उसके ऋणों को चुका सके।

कामन ला के अधीन स्थिति।

2.10. इन कानूनों से जो स्थिति सामने आती है वह कामन ला के अधीन स्थिति से भिन्न है। कामन ला के अधीन जो स्थिति थी उसका एक अच्छा संक्षिप्त वर्णन एक लेखक ने हार्वड ला रिव्यू[5] में इन शब्दों में किया है :—

"कामन ला में स्त्री की सम्पत्ति धारण करने या उसका हक प्राप्त करने की क्षमता विवाह द्वारा नष्ट नहीं होती थी। किन्तु विवाह के महत्वपूर्ण परिणाम होते थे। उसने पुरुष को उस सम्पत्ति के उपयोग और उपभोग का अधिकार दिया जो विवाह के समय उसकी पत्नी के स्वामित्व में थी या जो उसकी पत्नी ने पति-आश्रय (कोवर्चर) के दौरान अर्जित की हो। पति अपनी पत्नी को भू-सम्पदा पर कब्जा करने और उसके किराए तथा लाभ के उपभोग का अधिकार तो अर्जित करता था किन्तु, उसकी स्वामी पत्नी ही होती थी। उसके हित का वर्णन दोनों व्यक्तियों के जीवन पर्यन्त सम्पदा के रूप में किया जाता था क्योंकि पति-आश्रय (कोवर्चर) सामान्यतः पक्षकारों में से किसी एक की मृत्यु से ही समाप्त हो सकता था, किन्तु और अधिक ठीक-ठीक कहा जाए तो यह सम्पत्ति पति-आश्रय (कोवर्चर) की अवधि के लिए थी। यदि उसकी मृत्यु अपनी पत्नी की मृत्यु से पूर्व होती थी तो सम्पत्ति का स्वामित्व पत्नी में होता था और यदि पत्नी की मृत्यु अपने पति की मृत्यु से पूर्व होती थी तो स्वामित्व उसके (पत्नी के) वारिसों में होता था किन्तु यदि संतान जीवित उत्पन्न हुई हो तो सौजन्यता

---

1. पूर्वगामी पैरा 2.7।
2. पूर्वगामी पैरा 2.4 देखिए
3. पूर्वगामी पैरा 2.8।
4. 1935 का अधिनियम (परिशिष्ट 4)।
5. विलियम मैकर्डी "टार्ट्स इटवीन पर्सन्स इन डोमेस्टिक रिलेशन" (1920—1930) 43, हार्वड लॉ रिव्यू, 1030, 1031 1033।

के नाते पति को अपने जीवन पर्यन्त उस सम्पत्ति के उपभोग का अधिकार प्राप्त होता था : पति को अपनी पत्नी के 'चोजेज़ इन एक्शन' का उपयोग करने का और इस उद्देश्य के लिए उनका कब्जा प्राप्त करने का अधिकार था और उसके बाद वे वैयक्तिक जंगम वस्तु (चेटेल्स पर्सनल) हो जाते थे। जंगम वस्तुओं की विनश्वर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि कामन ला के अधीन उनमें कोई सम्पदा नहीं होती थी, पति द्वारा उसका उपयोग करने के अधिकार में ऐसा पूर्ण आधिपत्य जुड़ा होता था जो स्वामित्व की कोटि में आता था और परिणाम स्वरूप विवाह के बारे में कहा जाता था कि उससे उसे (पति को) विधि के प्रवर्तन द्वारा विधिक हक प्राप्त होता था[1]।

"विवाहित स्त्री को अपने लिए संविदा करने की कोई क्षमता नहीं थी और उसके निष्पाद्य वचनबंध शून्य होते थे किन्तु उसमें अपने पति सहित अन्य के अभिकर्ता के रूप में कार्य करने की क्षमता होती थी। वह भू-सम्पत्ति में अपनास्वामित्व हस्तांतरित नहीं कर सकती थी किन्तु इंगलैण्ड में जुर्माना और वसूली के रूप में और अमरीका में हस्तांतरण में अपने पति के साथ शामिल होकर वह ऐसा कर सकती थी। परिणामस्वरूप, पति और पत्नी दोनों ही में समान नियोग्यता थी और इनमें अन्य व्यक्ति के साथ संविदा करने या उसे हस्तांतरण करने की क्षमता का अभाव था[2]।

"पति को अपनी पत्नी की सेवाओं और उपार्जन का हक प्राप्त था, चाहे वह सेवा घर पर या अन्यत्र, स्वयं उसके लिए या किसी अन्य के लिए की गई हो,[3] और पति का कर्तव्य था कि वह उसका (पत्नी का) भरण पोषण करे[4]। कोई भी विवाहित स्त्री केवल अपने नाम से वाद नहीं ला सकती थी और न केवल उसके नाम से उसके विरुद्ध वाद लाया जा सकता था। किन्तु जब कभी उसमें वास्तविक सामर्थ्य होती थी या वह मूल रूप से किसी अधिकार की धारक होती थी या किसी कर्तव्य के अधीन होती थी तो वाद पति और पत्नी के नाम ही लाया जाता था और निर्णय पति के पक्ष में या पति और पत्नी दोनों, के विरुद्ध प्रवर्तित किया जाता था। विवाहित स्त्री के विरुद्ध किए गए अपकृत्य के मामलों में उसके विधिक व्यक्तित्व को मूलरूप से मान्यता मिली थी और जहां तक स्वयं स्त्री के विधिक रूप से मान्यता प्राप्त हित को क्षति पहुंचाने वाले अपकृत्य का संबंध है वह उस स्त्री का 'चोज इन एक्शन' होता था और यदि पति की मृत्यु पत्नी की मृत्यु से पूर्व और पत्नी के चोज इन एक्शन को कार्यान्वित करने से पूर्व हो जाती थी तो वह पत्नी का चोज इन एक्शन बना रहता था[5]। किन्तु जब क्षति केवल पति को हुई हो, चाहे वह सेवाओं और उपार्जनों जैसे किसी हित से उसे वंचित करने से या भरण-पोषण जैसे उसके कर्तव्यों का भार बढ़ाने से हुई हो तब वह पति का चोज इन एक्शन होता था। इसी प्रकार इस के विपरीत स्थिति भी सही है। मूल रूप से विवाहित स्त्री अधिकांश अपकृत्य करने में समर्थ थी किन्तु पति-आश्रय (कोवर्चर) के दौरान उसका दायित्व एक तरह से लंबित रहता था और उसके लिए पति दायी होता था। यदि वह विवाह के दौरान अपकृत्य करती थी या उसने विवाह के पूर्व-अपकृत्य किया था या ऋण लिया था तो यद्यपि मूल रूप से वह उसका कर्तव्य था, किन्तु वाद पति और पत्नी के विरुद्ध लाया जाता था और निर्णय का प्रवर्तन दोनों में से किसी के विरुद्ध किया जा सकता था किन्तु यदि निर्णय के पूर्व पत्नी से पहले पति की मृत्यु हो जाती थी तो वह अनुयोग केवल पत्नी के विरुद्ध ही रह जाता था[6]। यदि निर्णय के पूर्व पति से पहले पत्नी की मृत्यु हो जाए तो यह प्रश्न पैदा होगा कि वाद हेतुक बचा रहेगा या नहीं।"

---

1. जहां तक कॉमन लॉ में सम्पत्ति का सम्बन्ध है, मैकर्डी, केसेस ऑन पर्सन्स एण्ड डोमेस्टिक रिलेशन्स (1927) 507–19, और उसमें उद्धत मामले देखिए।
2. विवाहोत्तर संविदाओं, हस्तांतरणों और कॉमन लॉ में अन्तरणों के बारे में, मेकार्डी केसेस ऑन पर्सन्स एण्ड डोमेस्टिक रिलेशन्स—पृष्ठ 520—36 और उसमें इकट्ठे किए गए मामले देखिए।
3. प्रैट, बनाम टेलर, क्रोक एलिस 61 (1587), ब्राशफोर्ड बनाम बर्किंघम, क्रोक जैक 77 (1606), बकले बनाम कालियर। साल्केल्ड 114 (1701), देखिए वारेन 'हस्बैंड्स राइट टू वाइफ्स सर्विसेज' (1925) 38, हार्वर्ड लॉ रिव्यू 421, 622।
4. देखिए मैकर्डी, केसेस ऑन पर्सन्स एंड डोमेस्टिक रिलेशन्स, पृष्ठ 709—35 और उसमें उद्धृत मामले।
5. मैकर्ड्री केसेस ऑन पर्सन्स एंड डोमेस्टिक रिलेशन्स पृष्ठ 770—81, 794—818 और उसमें उद्धृत अन्य मामले।
6. मैकर्ड्री केसेस ऑन पर्सन्स एंड डोमेस्टिक रिलेशंस, पृष्ठ 577—708 और उसमें उद्धृत अन्य मामले।

अध्याय 3

भारत में स्त्रियों की स्थिति---संक्षिप्त ऐतिहासिक पुनर्विलोकन

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना।

3.1. पिछले अध्याय में हमने विवाहित स्त्रियों के सम्पत्ति संबंधी अधिकार के विषय में इंगलैण्ड की विधि के इतिहास की रूपरेखा बताई है। भारत में स्त्रियों की स्थिति का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण इस प्रकरण में उपयोगी होगा।

समाज के आदर्श।

3.2. कोई देश कितना सभ्य और सुसंस्कृत है इसका पता इस बात से लगता है कि वहां स्त्रियों का आदर कैसा होता है, समाज में उनकी प्रास्थिति क्या है और उनके साथ व्यवहार कैसा किया जाता है। स्त्रियों के संबंध में हमारे नैतिक आदर्शों की कल्पना बहुत संकीर्ण अर्थों में जैसे सेक्स संबंधी नैतिकता तथा सतीत्व और विवाह संबंधी विश्वस्तता की बाध्यता के अर्थों में की गई है[1]।

किन्तु ऐसे दृष्टिकोण से समाज के समग्र व्यवहार के बारे में बहुत अधूरा चित्र उभरेगा। स्त्रीत्व के बारे में समाज के आदर्शों के अन्तर्गत न केवल पति और पत्नी के संबंध या मां और बच्चों के संबंध या पारिवारिक जीवन के अन्य घनिष्ट संबंध आते हैं बल्कि उसके अन्तर्गत स्त्री की क्षमता, उसके चरित्र समता, आत्मनिर्भरता और विकास की स्वतंत्रता के लिए उसके दावे वैयक्तिक स्वतंत्रता, संपत्ति के स्वामित्व और नियंत्रण अपना व्यवसाय चुनने के उसके अधिकार और समाज के एक सदस्य के रूप में उसके अन्य अधिकार और कर्तव्य भी हैं[1]।

दो सामान्य सर्वेक्षण।

3.3. इस बात को ध्यान में रखते हुए हम भारत में स्त्रियों के सम्पत्ति से संबंधित विधिक अधिकारों के विशेष संदर्भ में सामान्य तौर पर उनकी स्थिति का ऐतिहासिक सर्वेक्षण करेंगे। हम इस सर्वेक्षण की भूमिका के रूप में, स्त्रियों के विधिक अधिकारों के संबंध में दो आम बातें कहना चाहेंगे। पहली बात यह है कि यह अधिकार इतिहास के विभिन्न कालों में घटन बढ़ते रहे हैं और इनके कारणों पर विचार करने की हमें आवश्यकता नहीं है और दूसरी बात यह है कि इन विधिक अधिकारों को अन्यत्र की अपेक्षा भारत में पहले मान्यता मिली है।

दाय योग्य सम्पत्ति।

3.4. जहां तक पहली बात का अर्थात् विधिक अधिकारों के घटने-बढ़ने का संबंध है--दाय योग्य संपत्ति[2] में स्त्रियों के भाग लेने का उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

हिन्दू पद्धति में, भट्टाचार्य[3] ने दो परस्पर विरोधी सिद्धांतों का उल्लेख किया है--पहले सिद्धान्त के अनुसार स्त्रियों को आमतौर पर विरासत के अधिकार से अपवर्जित किया गया है और दूसरे सिद्धान्त के अनुसार उन्हें आंशिक अधिकार दिया गया है। किन्तु वह यह भी कहते हैं कि इन दोनों में ईर्ष्या और प्रतिद्वन्दिता की भावना समान रूप से विद्यमान है। भट्टाचार्य[3] यह भी कहते हैं कि साधारणतया अपवर्जन का सिद्धान्त पुरातन सिद्धांत है जबकि आंशिक अधिकार देने का सिद्धांत आधुनिक सिद्धांत है किन्तु उनका यह कहना है कि प्रत्येक दशा में विधि में निरन्तर प्रगति नहीं हुई है।

उदाहरण के लिए दाय भाग में प्रख्यापित सम्पत्ति की विधि मिताक्षरा पद्धति की अपेक्षा बाद में विकसित हुई, तथापि जहां पुत्र विद्यमान हो वहां पिता की संपत्ति में पुत्री के अधिकार के संबंध मे मिताक्षरा[4], दायभाग[5] से आगे है।

हिन्दू स्त्री के अधिकार को अन्यत्र स्वीकृत किए जाने के बहुत पहले, मान्यता प्राप्त हो गई थी।

3.4क. दूसरे, यह उल्लेखनीय है कि स्त्री के स्वयं अपनी पृथक सम्पत्ति को धारण करने के अधिकार के योरपीय देशों में स्वीकार किए जाने से बहुत पहले, उसे हिन्दू विधि में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी[6]।

---

1. पी० एस० शिव स्वामी अय्यर, इवोलुशन ऑफ हिन्दू मोराल आइडियल्स (कमला लेक्चर्स कलकत्ता यूनिवर्सिटी) (1935), पृष्ठ 54।
2. आगामी पैरा 3.28 भी देखिए।
3. भट्टाचार्य, ज्वाइंट हिन्दू फैमिली (टी० एल० एल० 1884, 1885) पृष्ठ 63-64।
4. मिताक्षर, अध्याय 1, खण्ड 7, पैरा 11 और 14।
5. दायभाग, अध्याय 3, खण्ड 2, पैरा 36 और 37।
6. पी० एस० शिव स्वामी अय्यर, इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू मोराल आइडियल्स (कमला लेक्चर्स, यनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता), (1935) पृष्ठ 50।

किसी स्त्री को उसके विवाह पर उसके रिश्तेदारों या उसके पति द्वारा दिए गए उपहार और वह सब जो वह विवाह के पश्चात् अपने पति और उसके परिवार से प्राप्त करती थी, उसका होता था हालांकि पति का भी उस पर कुछ दावा होता था। कन्या को स्वयं अपने परिवार से या उसके वाग्दत्त वर से आभूषणों या अन्य उपहारों के रूप में जो सम्पत्ति प्राप्त होती थी उसे उसकी ही सम्पत्ति माना जाता था। अन्यत्र की अपेक्षा भारत में स्त्रियों को बहुत पहले ही सम्पत्ति के व्ययन का पर्याप्त अधिकार प्राप्त था।

इन सभी बातों से पता चलता है कि सम्पत्ति अधिकारों के संबंध में अपेक्षाकृत उदार दृष्टिकोण था[1]।

रोम में स्थित मैनर्स सहित विवाह।

2.5. भारत में जो स्थिति प्रचलित थी उसकी तुलना हम रोम में प्रचलित स्थिति से कर सकते हैं। रोम में[1] कन्वेन्सियों इन-मैनस सहित विवाह से, जो पूर्व काल में विवाह का नियमित स्वरूप था, पति को उस सभी सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त हो जाता था जो पत्नी के पास उसके विवाह के समय थी। इसके अतिरिक्त पति को उस सभी सम्पत्ति का भी हक प्राप्त होता था जो वह (पत्नी) बाद में अर्जित करे चाहे वह दान द्वारा अथवा अपने परिश्रम द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति क्यों न हो। निस्संदेह बाद में "मैनर्स" बिना विवाह सामान्य रोमन विवाह बन गए और इससे स्थिति में सुधार हुआ। किन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि स्त्रियों के अधिकारों को भारत में अन्यत्र की अपेक्षा बहुत पहले[2] मान्यता मिल गई थी।

2. हिन्दू स्त्रियों की स्थिति–काल क्रमानुसार मुख्य विभाजन

ऐतिहासिक सर्वेक्षण।

3.6. ऐतिहासिक सर्वेक्षण से, जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है, यह स्पष्ट हो जाएगा कि स्त्रियों के अधिकारों में क्या उतार-चढ़ाव हुए, और उनकी प्रास्थिति को अपेक्षाकृत शीघ्र मान्यता कैसे मिली। हम भारत में स्त्रियों की स्थिति के ऐतिहासिक सर्वेक्षण को निम्नलिखित भागों में विभाजित करेंगे :—

(1) शताब्दी 4000 ई० पू० से 1500 ई० पू० का काल–यह काल मौटेतौर से वैदिक काल[3] के तत्सम है।

(2) शताब्दी 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० का काल–यह काल मोटेतौर से पश्चातवर्ती संहिताओं[4] ब्राह्मणों और उपनिषदों के काल के तत्सम हैं।

(3) शताब्दी 500 ई० पू० से 500 ई० तक का काल–यह काल मौटेतौर से धर्मशास्त्रों, वीर काव्यों और प्राचीन स्मृतियों के काल के तत्सम है।

(4) 500 ईसवी से 1800 ईसवी तक का काल–यह काल मोटे तौर से पश्चात्वर्ती स्मृतियों, टीकाकारों और सार-संग्रहों के काल के तत्सम है।

(5) 1801 ई० से 1955 ई० तक का काल (जिसे सुविधा की दृष्टि से ब्रिटिश काल कहा जा सकता है)।

(6) 1956 से आगे का काल।

3 वैदिक काल

प्रथम काल (4000 ई० पू० से 1500 ई० पू० तक)।

3.7. आम राय यह है कि प्रथम काल अर्थात वैदिक काल भारत के सामाजिक इतिहास में एक श्रेष्ठ अध्याय रहा है। वेदों में देवकुल के उन देवी देवताओं को जिनकी कल्पना आर्यों ने की थी प्रेरणादायक आह्वानों तथा उन सभी वस्तुओं आदि के जिनसे वे आह्लादित और मुग्ध होते थे, सजीव चित्र में प्रकृति का सुन्दर वर्णन मिलता है। सुन्दर, आश्चर्यजनक और उत्कृष्ट वस्तु देख कर मनुष्य के मन में भय और रोमांच के जो भाव उत्पन्न होते हैं उनकी जो अभिव्यक्ति वेदों में की गई है वह अद्वितीय है और वैसी अभिव्यक्ति शायद ही कहीं हुई हो। प्रकृति में यह गहन रूचि और जो कुछ उन्होंने देखा या जिसकी उन्होंने कल्पना की उन सब का इतना मोहक वर्णन करने की क्षमता से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में समाज स्वस्थ था।

उस समय का समाज प्रधानतः कृषक समाज था, किन्तु वह आवश्यक रूप से आदिकालीन नहीं था। स्त्रियों की प्रास्थिति पुरुषों के समान ही थी[5]। उपनयन संस्कार (उपनयन–जिसका शाब्दिक अर्थ होता है गुरु के आश्रम के निकट ले जाना) लड़कियों और लड़कों दोनों के लिए किया जाता था। स्त्रियां वेदों का अध्ययन करती थीं, और यही नहीं वैदिक-सूक्तों की रचना भी करती थीं[3]। लोक जीवन में वे मुक्त रूप से भाग लेती थीं।

---

1. बनर्जी मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 394।
2. पूर्वगामी पैरा 3.4।
3. ऋग्वेद के काल के सम्बन्ध में, काणे का हिस्ट्री ऑफ हिन्दू धर्मशास्त्र जिल्द 2, भाग 1, पृष्ठ 4 देखिए।
4. द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ कालों के सम्बन्ध में आल्तेकर का पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956), पृष्ठ 336 देखिए।
5. आल्तेकर, पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956, पृष्ठ 409 और पृष्ठ 335—339) देखिए।
6. आगामी पैरा 3.8 देखिए।

एक विवाह प्रथा सामान्य नियम था और गृहस्थ की पत्नी का सम्माननीय स्थान था। स्त्री के सांपत्तिक अधिकारों के सम्बन्ध में कुछ निर्योग्यताएं थीं किन्तु ऐसा मुख्य रूप से इस कारण था कि अभी आर्य बस ही रहे थे, और उन्हें निश्चित रूप से यह विश्वास नहीं हो पाया था कि स्त्रियां लड़ाकू जातियों के विरुद्ध अपनी संपत्ति की रक्षा कर सकेंगी[1]।

भारत में वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति उस स्थिति की तुलना में कहीं अच्छी थी जो प्रायः आदिकालीन अन्य समाजों में उनकी थी।

विवाह।

3.7 क. ऋग्वेद[2] में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि आर्य जाति की वधू व्यस्क स्त्री होती थी।

वैदिक काल में आदर्श विवाह एक ऐसा धार्मिक संस्कार होता था जो पति और पत्नी को गृहस्थी का संयुक्त स्वामी बनाता था यह वैदिक शब्द "दम्पति" [3, 3क] की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है। यह पुरानी परम्परा कि स्त्री पति की संपत्ति होती है अभी तक पूरी तौर से समाप्त नहीं हुई थी। ऋग्वेद में जुए के संबंध में प्रसिद्ध सूक्त[4] से पता चलता है कि पक्के जुएबाज अपनी पत्नी को जुए में अपने विरोधियों को दे देते थे। किन्तु इस सूक्त में जुएबाजों को दी गई सलाह से पता चलता है कि सामाजिक चेतना ऐसे व्यवहार के विरुद्ध हो चली थी।

निम्नलिखित श्लोक[5] जुएबाजों से सम्बन्धित हैं :

"10. जुएबाज की परित्यक्त पत्नी व्यथित होती है। मां, पुत्र के अपनी इच्छानुसार इधर-उधर भटकने के कारण दुखी होती है। ऋणग्रस्त और धन के लिए लालायित जुएबाज, भयभीत होते हुए भी रात में दूसरों के घरों में[6] (लूटपाट करने के लिए) जाता है।"

"11. जुएबाज दूसरों की सुखी पत्नी और सुव्यवस्थित घरों को देख कर दुखी होता है। फिर भी पूर्वाह्न में वह भूरे अश्व पर साज चढ़ाता है और पापी, रात्रि में आग के समीप लेटता है।"

तब स्त्री की स्थिति संतोषजनक थी। निस्संदेह, आर्थिक कारणों से साधारणतः लड़कियों को लड़कों की अपेक्षा कम पसंद किया जाता था।

समाज में कुछ ऐसे माता-पिता भी होते थे जो विदुषी और योग्य लड़कियां प्राप्त करने के लिए विशेष धार्मिक कर्म किया करते थे। एक उपनिषद्[6] के श्लोक में यह बात स्पष्ट हो जाती है। लड़कियों को लड़कों के समान ही शिक्षा दी जाती थी और उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन भी करना होता था। लड़कियों का विवाह काफी बड़ी आयु में होता था और इस कार्य के लिए सामान्य आयु 16 या 17 वर्ष[7] होती थी।

3.8. हमने पढ़ा है कि प्राचीन काल में, विशेषकर वैदिक काल में, स्त्रियों को सर्वोच्च बौद्धिक सम्मान[8] किया जाता था। उदाहरणार्थ ऋग्वेद और उपनिषदों[9] में तीन प्रकार के सूक्तों की रचना के लिए स्त्रियां जिम्मेदार बताई गई हैं। कुछ सूक्त तो पूर्णरूप से स्त्री 'ऋषियों' के हैं और कुछ सूक्तों का आंशिक रूप से उच्चारण उन्होंने किया है, और कुछ सूक्तों के संबंध में अनिश्चितता है। पहले वर्ग में हम निश्चित रूप से विश्ववरा और अपाला[10] के सूक्त शामिल कर सकते हैं दूसरा वर्ग लोपामुद्रा और शशीयाणी[11] का है। तीसरे वर्ग का हम एक ही उदाहरण देते हैं और इसमें घोष के सूक्त आते हैं, जो एक कोढ़ी युवती थी जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि उसकी बिमारी देवी चिकित्सकों द्वारा ठीक कर दी गई थी, और उसने उनके सम्मान में सूक्तों की रचना की[12-13]।

---

1. आल्तेकर, पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956), पृष्ठ 409 देखिए।
2. ऋग्वेद, अध्याय 10, श्लोक 85, 42, 46।
3. दम्पति।
3. क. आल्तेकर का पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, विवाहित जीवन पर अध्याय देखिए।
4. ऋग्वेद अध्याय 38।
5. ऋग्वेद 1 अध्याय 10 श्लोक 3.5, श्लोक 10-11, एच० एच० विल्सन (संस्करण) ऋग्वेद (1928) जिल्द 6, पृष्ठ 57।
6. बृह० उप० अध्याय 6, श्लोक 4, 27।
7. आल्तेकर, का पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, चाइल्डहुड एण्ड एजुकेशन (बचपन और शिक्षा) सम्बन्धी अध्याय।
8. पद्मिनी सेन गुप्ता—दि स्टोरी ऑफ विमेन आफ इण्डिया (1974) पृष्ठ 42।
9. शकुन्तला राव शास्त्री—विमेन इन् दि वैदिक एज, पृष्ठ 25, 26।
10. ऋग्वेद, पुस्तक 8, सूक्त 80।
11. ऋग्वेद, पुस्तक 1, सूक्त 179, 1 और 2 और ऋग्वेद पुस्तक 5, सूक्त 62, 5—8।
12. ऋग्वेद, पुस्तक 5, सूक्त 39, पुस्तक 10 सूक्त 39-40।
13. विस्तृत सूची के लिए आर० के० मुखर्जी का एन्सिएन्ट इण्डियन एजुकेशन (मैकमिलन 1951) पृष्ठ 51 देखिए।

एक अन्य वैदिक सूक्त में वाक् (मानवीकृत वाणी) की वर्णन "देवताओं की रानी"[1] के रूप में किया गया है। कहा जाता है कि वह मुनि अम्भीण की पुत्री थी। वाक् "शब्द" है जो आत्मा को प्रथम रचना और उसका प्रतिनिधि है, और मनुष्य और देवताओं[2] के बीच संचार का साधन है।

वह अपने गुणों का इन प्रेरणादायक शब्दों में वर्णन करती है :—

"3. मैं रानी, धन की संकलनकर्त्री, अत्यन्त गंभीर, उनमें से प्रथम हूं जो उपास्य हैं। भगवान ने मुझे अनेक स्थानों में स्थापित किया है जिससे कि अनेक घरों में प्रवेश और वास कर सकूं।

4. मेरे ही द्वारा सब लोग भोजन करते हैं जिनसे उनकी उदरपूर्ति होती है—और उनमें ऐसी प्रत्येक व्यक्ति है जो देखता है, सांस लेता है और उच्चारित शब्दों को सुनता है। वे इसको जानते हैं तो भी वे मेरे समीप होते हैं। अब लोग उस सच्चाई को सुनो जो मैं कहती हूं।"

3.8क. भरहुत की मूर्तियों (ई० पू० दूसरी शताब्दी)[3] पर जो शिला लेख हैं उन से एक शिलालेख से यह पता चलता है कि एक योगी के कुशिष्य ऋषि थे[4]।

4. उत्तर वैदिक काल

3.9. द्वितीय काल में स्त्री को स्थिति में कोई मूलभूत ह्रास नहीं हुआ था। 500 ई० पू० तक सती प्रथा और बाल विवाह की प्रथा नहीं थी और इस प्रकार स्त्री के भाग्य में कटुता नहीं थी। उसको उपयुक्त रूप में शिक्षा दी जाती थी और पुरुष की ही भांति धार्मिक विशेषाधिकार दिये जाते थे। अपने विवाह के तय होने में उसको भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार था और गृहस्थी में उसकी सम्मानित स्थिति होती थी। वह परिवार में और समाज में मुक्त रूप से आ जा सकती थी और लोककार्यों में भी बुद्धिमत्तापूर्ण योगदान कर सकती थी[5]। यदि उसकी इच्छा होती थी या आवश्यकता होती थी तो वह जीवनयापन का कोई साधन अपना सकती थी[5]। वस्तुतः ऐसे कार्यक्षेत्रों का, जिन्हें स्त्रियों ने अपनाया था समकालीन साक्ष्य है जिस की चर्चा हम आगे करेंगे। (1500 ई० पू० से 500 ई० पू०)

उच्चतर जातियों की स्त्रियां यज्ञ में अपने पतियों की अभिन्न अंग होती थीं[7]। स्त्रियां संपत्ति धारण कर सकती थीं और विधवाएं पुनर्विवाह कर सकती थीं। उपनिषद् काल में गार्गी जिसने शास्त्रार्थ में अपनराजेय यज्ञवस्कटा को चुनौती दी, और मैत्रेयी जिसने धन को इसलिये ठुकरा दिया था इससे उसे अमरता[7] नहीं मिलती जैसी दार्शनिक महिलाएं हुई थीं।

3.10. यह उल्लेखनीय है कि उपनिषदों में भारतीय तत्वमीमांसा के विकास का चरम बिन्दु परिलक्षित होता है। यद्यपि इनकी शब्द रचना अलग अलग है किन्तु इन सभी कृतियों में विचारों का मर्म एक ही है। उनमें सार्वभौमिक सिद्धान्त और दृग्विषय के बीच चिर विद्यमान एकता के आन्तरिक दर्शन का आभास मिलता है यद्यपि सभी व्यक्तिगत अनुभवों से जो उलझन पैदा करते हैं उस एकता की दृष्टि धुंधली हो सकती है।

विश्व साहित्य में उत्कृष्ठ प्रार्थनाओं में से एक प्रार्थना एक उपनिषद में आती है। यह वह प्रार्थना है जिसमें विश्वात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह व्यक्ति को अंधकार से प्रकाश की ओर[8] असत्य से सत्य की ओर और मरण से अमरता की ओर ले जाए।

इन शास्त्रार्थों में बड़े बड़े प्रश्न उठाए गए हैं और उनके सरल उत्तर दिये गये हैं। फिर भी इस कथनोपकथन की उदात्त गुणवत्ता कभी कम नहीं होती है।

हम इस बात का उल्लेख यह दिखाने के लिये कर रहे हैं कि कोई ऐसी विवाहित स्त्री जिसकी बौद्धिक योग्यता असाधारण नहीं होती थी या यूं कहिये कि साधारण बौद्धिक योग्यता वाला कोई व्यक्ति ऐसे विचार-विमर्श में भाग नहीं ले सकता था।

---

1. ऋग्वेद, पुस्तक 8, सूक्त 89, श्लोक 10, राल्फ ग्रिफिथस, हिम्स ऑफ वेद (चौखम्बा) संस्कृत सीरीज, सं० 35 (1963), जिल्द 2, पृष्ठ 251।
2. राल्फ ग्रिफिथस, हिम्स ऑफ वेद (चौखम्बा) संस्कृत सीरीज सं० 35 (1963) जिल्द 2, पृष्ठ 571, पाद टिप्पण।
3. आर० के० मुखर्जी, एन्सियेन्ट इण्डियन एजुकेशन (मेकमिलन, 1951) फ्लेट सं० 1, सामने का पृष्ठ 68 (हर्सिटेजेज इन भरहुत स्कल्पचर्स)
4. आर० के० मुखर्जी द्वारा उल्लिखित कनिंघम के विचार।
5. आल्तेकर पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956) पृष्ठ 343।
6. आगामी पैर 3.11 देखिए।
7. भारत का गजेटियर (1973) खण्ड 2, पृष्ठ 147।
8. वृद्ध 340 1, 328।

सामाजिक प्रास्थिति ।

3.11. से 3.13. इसमें कोई संदेह नहीं है कि द्वितीय काल में स्त्रियों को सामाजिक प्रस्थिति में कुछ अवनति हुई, किन्तु फिर भी दूसरे देशों में स्त्रियों की स्थिति की तुलना में भारतीय स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। वास्तव में प्रथम काल में स्त्रियों की संपत्ति संबंधी कुछ नियोग्यताएं थी, किन्तु दूसरे काल में इस संबंध में, कम से कम विवाह में जंगम वस्तुओं के उपहार के संबंध में स्थिति में सुधार हुआ[1]।

5. धर्मसूत्र, महाकाव्य आदि का काल

तृतीय काल (500 ई० पू० से 500 ई०)।

3.14. तृतीय काल में जो धर्मसूत्रों महा काव्यों और पुरातन स्मृतियों का काल था, स्त्रियों की स्थिति में कुछ ह्रास हुआ। आल्तेकर[2] के अनुसार इसका कारण स्थानीय (अनार्य) जातियों के साथ अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा थी। वे कहते हैं :

> "अनार्य पत्नी का आर्य गृहस्थी में प्रवेश, स्त्रियों की स्थिति में उस सामान्य ह्रास का मुख्य कारण है जो धीरे धीरे अप्रकटरूप से लगभग 1000 ई० पू० से आरम्भ हुआ था और लगभग 100 वर्ष बाद बिल्कुल स्पष्ट हो गया। ऐसा इस तथ्य के कारण था कि अनार्य पत्नी संस्कृत भाषा और हिन्दू धर्म से अनभिज्ञ होती थी इसलिये यह स्पष्ट है कि धर्म में उसे वे विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होते थे जो आर्य पत्नी को प्राप्त होते थे। स्पष्ट है कि संपूर्ण स्त्री समाज को अध्ययन और धार्मिक कर्तव्यों के लिये अपात्र घोषित कर दिया गया था।"

इसी काल में लड़कियों के मामले में "उपनयन"[3] के स्थान पर विवाह की प्रतिस्थापना हुई।

कुछ किवदंतियों में स्त्रियों की अधीनस्थता का अनुमोदन न होना।

3.15. इस काल के दौरान भी ऐसी किवदंतियां मिलती हैं जिनमें स्त्रियों की अधीनस्थता प्रकट नहीं होती है बल्कि उनमें अधिक प्रबुद्ध मत इंगित होता है[4]। उदाहरणार्थ, महाभारत में सरस्वती को एक विशिष्ट स्थान दिया गया है, और उसका वर्णन "वेदों की जननी" के रूप में किया गया है[5]।

रोम और अन्य देशों में स्थिति।

3.16. वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में स्थिति अच्छी थी। यह उल्लेखनीय है कि जहां तक पत्नी की न्यायिक प्रस्थिति का संबंध है रोमन विधि में, पत्नी को पति की "पुत्री" समझा जाता था। रोमन विधि के अधीन बहुत लम्बे अरसे तक पत्नी वसीयत पर हस्ताक्षर नहीं कर सकती थीं, संविदा नहीं कर सकती थी और साक्षी नहीं बन सकती थी[6]।

यह कहा जाता है कि स्त्रियों, पुत्रों और गुलामों के इस "लक्षण" से प्राचीन यूनानवासी और रोमवासी भली प्रकार परिचित थे[7]।

यूनानवासी इस पत्नी 'समुदाय' (कम्यूनिटी आफ वाइव्स) से परिचित थे[8]।

गुप्तकाल।

3.17. भारत में स्त्रियों की स्थिति में ह्रास गुप्त काल (320–540 ई०) में दिखाई देता है। इस काल में स्वयंवर (शौर्य प्रतियोगिता के पश्चात् कन्या द्वारा वर का वरण किया जाना) और गन्धर्व विवाह तुलनात्मक रूप में कम हो गए थे। विधवाओं का पुनर्विवाह अच्छा नहीं माना जाता था, यद्यपि यह पूर्ण रूप से प्रतिषिद्ध नहीं था।[9] आमतौर पर, स्त्रियों को सामाजिक प्रस्थिति में ह्रास हुआ था।

ऐसी स्थिति होने पर भी ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें स्त्रियों ने विज्ञान और साहित्य में असाधारण दक्षता प्राप्त की थी। इस संदर्भ में लीलावती और खन्ना के नाम उल्लेखनीय हैं, जो गणित शास्त्र और खगोल शास्त्र की परम विदुषी थीं। उस समय तक पर्दा या एकान्त में रहने का प्रश्न नहीं था[10], किन्तु राज परिवार की महिलाओं के लिये ये बातें थी। वे उतनी कड़ाई से पालन नहीं करती थीं जितनी कड़ाई से बाद में होता था।

---

1. राधा कुमुद मुकर्जी "विमेन इन एंसिएन्ट इण्डिया" बैग (संस्करण) में, विमेन ऑफ इण्डिया (1958) पृष्ठ 1, 6।
2. आल्तेकर पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956) 'रिस्ट्रोस्पेक्ट एण्ड प्रास्पेक्ट' सम्बन्धी अध्याय।
3. "उपनयन" के लिए पूर्वगामी पैरा 3.7 देखिए।
4. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड 1 पृष्ठ 261।
5. महाभारत, शान्ति पर्व, 12.920।
6. आल्तेकर, पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1956) पृष्ठ 33।
7. प्लूटार्चस लाइट्स (45 ई० पू०—125 ई०)–IXलाइकरगस (वार्ड लॉक) पृष्ठ 36, कटो दि यंगर पृष्ठ 538, 539, इसके विपरीत अरिस्टाटिल पालिटिक्स खण्ड 2, अध्याय 2, हिस्ट्री एनिमल्स IX–1, इन सब के प्रति गौड़ ने अपने हिन्दू कोड (1938), पृष्ठ 8, पैरा 17 में निर्देश किया है।
8. हैरोडोटस। IV, 104, प्लेटो का रिपब्लिक (कनफोर्ड संस्करण) पृष्ठ 152, पाद टिप्पण।
9. आर० सी० मजूमदार, (सम्पादक) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, खण्ड 3 (दि क्लासिकल एज), पृष्ठ 567।
10. आर० सी० मजूमदार (सम्पादक) हिन्दी एण्ड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल खण्ड3 (दि क्लासिकल एज) पृष्ठ 569 और खण्ड 2, पृष्ठ 575।

कालिदास के प्रसिद्ध नाटक में नायिका शकुन्तला राजदरबार में घूंघट निकालकर उपस्थित होती है, किन्तु उसने अपना घूंघट उस समय हटा दिया जब उस पर यह साबित करने के लिये जोर डाला गया कि वह शकुन्तला है[1]। हर्षचरित[2] में, जब राजकुमारी राज्यश्री को वर देखता है तो वह लाल रंग के रेशम का घूंघट किये हुए होती है।

किन्तु ये स्त्रियां उच्च वर्गों की थीं। ह्वेनसांग और इत्सिंग[3] ने स्त्रियों के एकान्त में रहने के विषय में कुछ नहीं लिखा है इससे पता चलता है कि उस समय ऐसी कोई आम प्रथा नहीं थी क्योंकि यदि ऐसी कोई विशिष्ट प्रथा होती तो उनका ध्यान उसकी ओर अवश्य आकृष्ठ हुआ होता।

उस काल के साहित्य में दो प्रकार की छात्राओं[4] का उल्लेख है : ब्रह्मवादिनी या आजीवन धर्मग्रंथों का अध्ययन करने वाली स्त्रियां और सद्योवाह अर्थात् वे स्त्रियां जो विवाह होने तक अध्ययन करती रहती थीं उन्हें सद्यो-वधु भी कहा जाता था।[5]

3.17क. इस काल में स्त्रियों को साहित्यिक वृत्तियां का प्रमाण अनेक स्रोतों से मिल सकता है। महान वैयाकरण पाणिनि[6] अपनी अष्टाध्यायी नामक कृति[7] में व्याकरण संबंधी अपने ऐसे नियमों का उदाहरण देते हैं जिनसे पता चलता है कि किस प्रकार स्त्रियां, पुरुषों के समान नियमित रूप से वेदों का अध्ययन करती थीं। साहित्यिक वृत्तियां।

"कठी" शब्द का अर्थ है यजुर्वेद की कठ शाखा का अध्ययन करने वाली स्त्री। इसी प्रकार से, "बहुऋची" शब्द का अर्थ है वह छात्रा जो बहुत से सूक्तों, अर्थात् ऋग्वेद[8] के सूक्तों में पारंगत हो।

उस समय की विदुषी स्त्रियां स्वाभाविक रूप से शिक्षिकाओं के रूप में कार्य करती थीं।

कात्यायन[9] ने अपनी पुस्तक वार्तिका[10] (टीका) में शिक्षिकाओं का उल्लेख किया है जो उपाध्याय या उपाध्यायी कहलाती थीं। और जो उपाध्यायानी अर्थात् शिक्षक की पत्नी से भिन्न होती थी। नया शब्द गढ़नेकी आवश्यकता से पता चलता है कि शिक्षिकाओं की संख्या बहुत अधिक थी। पतन्जलि ने भी ऐसी छात्राओं के लिये जिन्होंने मीमांसा दर्शनशास्त्र में विशेष अध्ययन किया था, विशेष पदनाम का उल्लेख किया है[11]।

3.17ख. ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्यिक वृत्तियों के अतिरिक्त, स्त्रियों के लिये सैनिक वृत्तियां भी खुली हुई सैनिक वृत्तियां। थीं। उदाहरणार्थ, महान वैयाकरण पतंजली ने अपने महाभाष्य[12] में भाला धारण करने वाली स्त्री का उल्लेख करने के लिये "शक्तिकी" शब्द का प्रयोग किया है[13]।

उल्लेखनीय है कि भरहुत में लगभग दूसरी शताब्दी ई० पू० का एक ऐसा शिलालेख है जिसमें एक ऐसी स्त्री का चित्रण है जो अश्व सेना के अग्रणी के रूप में घोड़े की पीठ पर सवार है और एक ध्वज लिये हुए है[13]।

कहा जाता है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने महल में पुरूषोचित आचरण वाली स्त्रियों को अंगरक्षक के रूप में रखा था—जिसका वर्णन सम्राट चन्द्रगुप्त के दरबार में यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने किया है[14]। इसी प्रकार, कौटिल्य[15] ने अपने अर्थशास्त्र में धनुष और बाण धारण करने वाली स्त्री सैनिकों का (स्त्री गणैः धन्विभिः) का उल्लेख किया है।

---

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 5।
2. हर्ष चरित अंक 4।
3. मजूमदार (सम्पादक) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, खण्ड 3, (दि क्लासिकल एज), पृष्ठ 509।
4. आर० सी० मजूमदार (सम्पादक), हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल (दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी) खण्ड 1 पृष्ठ 563।
5. आर० के० मुखर्जी, एन्शिएन्ट एजूकेशन (मैकमिलन, 1951) पृष्ठ 208 और 51।
6. पाणिनी का काल 600 ई० पू० और 300 ई० पू० के बीच में कहीं आता है। काणे, हिस्ट्री ऑफ हिन्दू धर्मशास्त्र, खण्ड 2, पृष्ठ 11 (600—300 ई० पू० आर० जी० भण्डारकर, जरनल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ रायल एसियाटिक सोसाइटी, खण्ड 16, पृष्ठ 340 (पांचवीं शताब्दी ई० पू०), कीथो, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ 425 (पांचवीं शताब्दी ई० पू०)।
7. पाणिनि 1.63।
8. राधा कुमुद मुखर्जी, "विमेन इन एन्सिएन्ट इण्डिया, बेग (सम्पादक) की पुस्तक विमेन ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 1, 6 पर।
9. कात्यायन का काल लगभग 200 ई० पू० था।
10. कात्यायन ऑन IV—1, 48 : राधा कुमुद मुखर्जी, 'विमेन इन एन्शिएन्ट इण्डिया" बेग (सम्पादक) "विमेन ऑफ इण्डिया,) (1958), पृष्ठ 1.6 पर।
11. आर० सी० मजूमदार, हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल (दि एच ऑफ इम्पीरियल यूनिटी), खण्ड 2 पृष्ठ 563।
12. पंतजलि ऑन। IV 1, 15(6)।
13. राधा कुमुद मुखर्जी "विमेन इन एन्शिएन्ट इण्डिया" बेग (सम्पादक) 'विमेन ऑफ इण्डिया (1958), पृष्ठ 1, 6 पर।
14. सैक क्रिडल, मैगस्थनीज, पृष्ठ 72।
15. राधा कुमुद मुखर्जी "विमेन इन एन्शिएन्ट इण्डिया" बेग (सम्पादक) विमेन ऑफ इण्डिया (1958), पृष्ठ 1, 6 में उद्धृत कौटिल्य।

विवाह की आयु का कम किया जाना।

3.17ग. ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में विवाह की आयु कम करने की स्त्रियों की शिक्षा और सभ्यता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा[1] । किन्तु उस काल में जिसकी समीक्षा की जा रही है इस अवनति की चरम सीमा नहीं पहुंची थी। 320 ई० तक का काल संक्रमण काल था और इस काल की साहित्यिक कृतियों[2] में हम स्त्रियों के दो सर्वथा भिन्न चित्र देखते हैं।

सांपत्तिक अधिकारों में सुधार।

3.18. सरसरी तौर पर यह कहा जा सकता है कि तीसरे काल में स्त्रियों की सांपत्तिक अधिकारों के क्षेत्र में स्थिति में सुधार हुआ, उदाहरण के लिये, कात्यायन के श्लोकों में स्त्री के उसकी सम्पत्ति संबंधी अधिकार को अधिक मान्यता दी गई[3]।

6. उत्तर स्मृति युग

चतुर्थ काल।

3.19. चौथे काल में जो उत्तरकालीन स्मृतियों, टीकाकारों और सार लेखकों का युग कहलाता है, सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति में और गिरावट आई। इस काल में बाल विधवाओं को पुनर्विवाह करने की अनुमति अप्रचलित हो गई। सती प्रथा भी मजबूत हो गई।

सांपत्तिक अधिकार।

3.20. इस काल में जिस एकमात्र क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ वह सांपत्तिक अधिकारों का क्षेत्र था। विधवा का उसके पति के अंश को विरासत में प्राप्त करने के अधिकार की अन्ततः 12 वीं शताब्दी ई० तक पूरे देश में मान्यता मिल गई। बंगाल में स्त्रियों की स्थिति में और सुधार हुआ और उसको यह अधिकार उस अवस्था में भी मिलने लगा जिसमें उसका पति अपनी मृत्यु के समय अविभक्त कुटुम्ब से अलग नहीं हुआ था। विरासत और विभाजन द्वारा प्राप्त सम्पत्ति को स्त्रीधन में सम्मिलित करके मिताक्षरा ने स्त्रीधन की परिधि का और विस्तार कर दिया। यह स्थिति कहां तक बची रही इस पर आगे चर्चा की जाएगी[4]। विधवा की संपदा सीमित बनी रही किन्तु दक्षिण भारत के कुछ भागों में वह उत्तरभोगियों की सहमति के बिना इस सम्पत्ति का धार्मिक प्रयोजनों के लिये दान कर सकती थी।

चतुर्थ काल में साधारण सामाजिक स्थिति।

3.23. जहां तक सामाजिक पहलू का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इस काल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में ह्रास हुआ, तथापि इसके कुछ ज्वलन्त अपवाद थे। स्त्रियां अनेक व्यवसायों में अग्रगण्य थी। उदाहरणार्थ मिथिला शाखा में, लक्ष्मी देवी नामक एक स्त्री द्वारा रचित विवाद–चन्द्र नामक कृति (और अन्य पुस्तकें भी) मिलती हैं। लक्ष्मी देवी ने लेखन कार्य अपने भतीजे 'मिसरु मिस्त्रा[5]' के नाम से किया। यह कृति 18वीं शताब्दी में लिखी गई थी[6]।

प्रशासन में हिन्दू स्त्रियां।

3.24. इस काल में, प्रशासन के क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय हिन्दू स्त्रियां हुई हैं उनमें से एक रुद्रम्बा थी जो एक काकतेय रानी थी और जिसका उल्लेख मार्को पोलो (1254–1324 ई०) ने भी किया है। मराठा नायिका ताराबाई (1700–1717 ई०)।

औरंगजेब के अन्तिम भीषण आक्रमण के दौरान मराठों की ओर से विरोध की प्राण थी[7]। दक्षिण में मंगम्माल के कल्याणकारी शासन की याद आज भी ताजा है[7]।

इस सन्दर्भ में अहिल्याबाई होल्कर[8] का नाम उल्लेखनीय है। उनमें प्रशासन करने की महान प्रतिभा थी।

---

1. आर० सी० मजूमदार (सम्पादक) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल, वाल्यूम–2 (दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी) पृष्ठ 562।
2. आर० सी० मजूमदार (सम्पादक) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, खण्ड 2, (दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी), पृष्ठ 562।
3. कात्यायन, श्लोक 921–927, आर० सी० मजूमदार, (सम्पादक) हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल (दि क्लासीकल एज) वाल्यूम 3।
4. आगामी पैरा 3.29 और 3.30।
5. मोरले, एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ जस्टिस इन ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ 225।
6. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया खण्ड 1, पृष्ठ 261।
7. के० एम० पाणिक्कर "दि मिडिल पीरियड", बेग (सम्पादक) विमेन ऑफ इण्डिया (1958) पृष्ठ 9, 10, 11 पर।
8. के० एम० पणिक्कर, 'दि मिडिल पीरियड', बेग (सम्पादक) पृष्ठ 9, 10, 11 पर।

7. व्ययन की शक्ति के संबंध में वृद्धियां

व्ययन का अधिकार।

3.25. इस स्तर पर, सम्पत्ति के व्ययन के अधिकार के सम्बन्ध में हुए विकास का संक्षेप में वर्णन करना सुविधाजनक होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास के क्रम में हिन्दू पत्नी के सम्पत्ति के व्ययन के अधिकार में अनेक उलट फेर हुए। इस सम्बन्ध में कि क्या पत्नी, पति की अनुज्ञा के बिना सम्पत्ति का व्ययन कर सकती थी, वैदिक साहित्य मूक है। समय के साथ-साथ जो सैनिक विकास हुए उनके दौरान न्यायशास्त्रियों ने इस प्रश्न पर सम्यक् रूप से ध्यान दिया। आरम्भ में स्मृतिकार[1] इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि स्त्रियों को पूरी शक्तियां दी जाएं, और वे पति की स्वीकृति पर ही जोर देते थे। किन्तु समय के साथ-साथ, इस स्थिति में जो अन्याय था उसको महसूस किया गया और बाद में उन्होंने सम्पत्ति को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया अर्थात् सौदायिका और असौदायिका। प्रथम श्रेणी की सम्पत्ति में वे उपहार सम्मिलित थे जो विवाह के समय रिश्तेदारों द्वारा स्नेहवश दिए गए हों। ऐसी सम्पत्ति स्त्री के पूर्ण नियन्त्रण में रहती थी।

दूसरी श्रेणी की सम्पत्ति ऐसी सम्पत्ति होती थी जो तकनीकी दृष्टि से स्त्री की सम्पत्ति तो होती थी किन्तु वह (स्त्री) उसका अन्य-संक्रामण नहीं कर सकती थी यद्यपि वह उस सम्पत्ति का उपभोग कर सकती थी।

सम्भव है कि दूसरी श्रेणी के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध था वह अविभक्त कुटुम्ब की धारणा से जुड़ा हुआ था क्योंकि अपनी पत्नी को, अशर्त दान करने की इजाजत पति को देकर किसी सहदायिकी को अविभक्त कुटुम्ब के साधनों का अपव्यय करने की अनुज्ञा देना अविभक्त कुटुम्ब के हित में नहीं था। दूसरी श्रेणी की सम्पत्ति के अन्तर्गत आने वाले दान प्रायः कुटुम्ब की सम्पत्ति होते थे।

स्त्रीधन की परिधि।

3.26. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है,[2] वैदिक साहित्य स्त्रीधन की परिधि के विषय में मूक है किन्तु मनु ने विस्तार से उन सम्पत्तियों को गिनाया है जो स्त्रीधन के अन्तर्गत आती हैं और इनमें 6 प्रकार की सम्पत्तियों का उल्लेख है[3]। मनु का तो यह भी कहना है कि जो स्त्री को उसके पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति–विशेषकर आभूषणों और कीमती वस्त्रों––से वंचित करेंगे, वे एक बड़ा पाप करेंगे।

"स्त्रीधन" में, विवाह के पश्चात् गैर-रिश्तेदारों द्वारा दिए गए दान और पत्नी द्वारा अपने लिए उपार्जित मजदूरी शामिल नहीं थी[4]। स्पष्ट है कि यह महसूस किया जाता था कि ऐसी सम्पत्ति और उपार्जनों का प्रयोग परिवार का भार उठाने के लिए पति की सहायता करने में किया जाना चाहिए[5]।

सातवीं शताब्दी ईसवी से ऐसी प्रवृत्ति थी कि स्त्रीधन की परिधि का विस्तार करने की प्रवृत्ति सामने आई। इस प्रवृत्ति का एक दृष्टांत देवल का भाष्य है जो भरण-पोषण भत्ता और आकस्मिक अभिलाभ को 'स्त्रीधन' में सम्मिलित करता है। यह-प्रवृत्ति विज्ञानेश्वर के भाष्य में पराकाष्ठा पर पहुंच गई। विज्ञानेश्वर द्वारा याज्ञवल्क्य स्मृति के भाष्य में स्त्रीधन की परिभाषा को इतना व्यापक बना दिया कि इसके अन्तर्गत स्त्री के कब्जे में की प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति, चाहे वह किसी प्रकार से अर्जित की गई हो जाएगी। हम इसका चर्चा आगे करेंगे[6]।

8. ब्रिटिश काल

पांचवां काल (1801 से 1955 ई०)।

3.27. जहां तक पांचवें काल (1801––1955 ई०) का सम्बन्ध है, हम यह देखते हैं कि इस विषय के नियमों का मुख्य स्रोत शास्त्रीय विधि ही थी। सम्पत्ति के अनेक अधिकारों के सम्बन्ध में उस समय प्रवृत्त नियमों की समीक्षा करना आवश्यक नहीं है और प्रत्येक शताब्दी में जो स्थिति थी उसकी चर्चा करना भी व्यवहार्य नहीं होगा। तथापि इस काल से सम्बन्धित कुछ मुख्य बातों का उल्लेख करना उपयोगी होगा।

(क) स्त्रीधन ऐसी सम्पत्ति होती थी जिसकी पूर्ण स्वामी स्त्री थी। इस सम्बन्ध में कि स्त्रीधन वास्तव में कौन-सी सम्पत्ति है और उस सम्पत्ति का अन्य संक्रामण करने की स्त्री की शक्ति क्या है, विभिन्न शाखाओं द्वारा प्राचीन धर्मग्रन्थों के निर्वचन में भिन्नता है। किन्तु सामान्य रूप से, स्त्रीधन पर स्त्री के प्रभुत्व से उसकी सम्पत्ति के उपभोग और व्ययन के पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। स्त्रीधन के उदाहरण ये हैं : स्त्री को कौमार्यकाल, पतिआश्रय (कोवर्चर) और वैधव्य के दौरान उसके पति और रिश्तेदारों से दान और वसीयत के रूप में प्राप्त सम्पत्ति जिसमें वे दान भी शामिल हैं जो उसको विवाह संस्कार के समय अग्नि के समक्ष या वधूत्सव पर दिए गए हों, वे दान जो पति द्वारा उसको दूसरी पत्नी

1. मनु, 9, 229।
2. पूर्वगामी पैरा 3.25।
3. मनु 9, 200।
4. कात्यायन।
5. आल्तेकर, पोजीशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन (1938), पृष्ठ 263।
6. आगामी पैरा 3.29 और 3.30 देखिए।

करते समय पहली पत्नी को सान्त्वना के रूप में दिए गए हों, ऐसे दान जो स्नेह वश उसे उसके स्वसुर या सास से मिले हों, और इसी प्रकार के अन्य दान।

(ख) जहां तक स्त्री की स्त्रीधन का व्ययन करने की शक्ति का सम्बन्ध है, आमतौर पर स्त्री को उसके कौमार्य और वैधव्य काल में पूर्ण शक्ति होती थी। वैवाहिक जीवन के दौरान उसका व्ययन का अधिकार उसकी सम्पत्ति के स्वरूप और स्रोत पर और हिन्दू विधि की उस शाखा पर निर्भर करता था, जिससे वह शासित होती थी।

(ग) स्त्रीधन का उत्तराधिकार विशेष नियमों द्वारा शासित होता था। यदि स्त्री की सन्तान होती थी, तो उत्तराधिकार के क्रम में पहला स्थान पुत्री का होता था और पुत्रियों में भी विवाहित पुत्री की अपेक्षा अविवाहित पुत्री को अधिमानता दी जाती थी, उसके बाद पुत्री की पुत्री का, और उसके बाद पुत्री के पुत्र का स्थान होता था। तत्पश्चात् सम्पत्ति पुत्र को और उसके बाद पुत्र के पुत्र को जाती थी। ऐसी स्त्री के स्त्रीधन का उत्तराधिकार जिसकी कोई सन्तान नहीं होती थी, विवाह के स्वरूप पर निर्भर करता था। यदि उसका विवाह अनुलोमित रूप में हुआ है तो सम्पत्ति पति को मिलती थी, नहीं तो उसके माता-पिता को चली जाती थी[1]।

स्त्री द्वारा विरासत में प्राप्त संपत्ति।

3.28. जहां तक स्त्री द्वारा विरासत में प्राप्त सम्पत्ति का सम्बन्ध है, यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि बौधायन[2] जैसे प्राचीन लेखकों ने इस आधार पर, कि स्त्रियों में शक्ति की कमी होती है, स्त्रियों को विरासत के लिए पूर्ण रूप से अक्षम घोषित किया है तथापि मनुस्मृति[3] का, जिसमें निकटतम सपिंडों की विरासत की चर्चा है, टीकाकारों द्वारा निर्वचन यह किया गया है कि एक सपिण्ड के रूप में[4] पत्नी को ऐसा अधिकार है भले ही मनु ने इस बात के प्रतिकूल घोषणा की है[5]। मनुस्मृति में कुछ अन्य श्लोक भी ऐसे हैं जिनमें स्त्री की सम्पत्ति को धारण करने की सामर्थ्य को मान्यता दी गई[6]।

स्त्री की व्ययन शक्ति पर निर्बन्धन।

3.29. यह उल्लेखनीय है कि याज्ञवल्क्य और विष्णु की स्मृतियों से जिसके अधीन विधवा, पुत्री और अन्य स्त्रियों को वारिसों के रूप में मान्यता दी गई है, ऐसा पता चलता है कि उनमें स्त्रियों द्वारा ली गई सम्पदा और पुरुष वारिसों द्वारा (जो उन्हीं स्मृतियों के अधीन सम्पत्ति पाते हैं) ली गई सम्पदा में कोई विभेद नहीं किया गया है। इस लिए कोई भी व्यक्ति यही अनुमान लगाएगा कि जहां तक स्मृतियों के प्रमाण का सम्बन्ध है, इनमें वास्तव में, ऐसा बहुत कम है जो इस बात का समर्थन करता हो कि विरासत में प्राप्त सम्पत्ति में स्त्री की सम्पदा सीमित होती है।

याज्ञवल्क्य।

3.29. क. याज्ञवल्क्य ने जिनका स्त्रीधन की परिभाषा के विषय में श्लोक बहुचर्चित है, यह घोषणा करते हैं कि[7] :—

"किसी स्त्री को उसके पिता, माता, पति, या भाई द्वारा जो कुछ दिया जाए या जो कुछ वह वैवाहिक अग्नि के समक्ष प्राप्त करे, या जो कुछ उसको पति द्वारा दूसरी पत्नी (आधिवेदनिका) से विवाह करने पर भेंट में दिया जाए, आदि को अर्थात् जो कुछ सम्बन्धियों द्वारा दिया जाता है, और उसका शुल्क तथा विवाह के उपरान्त स्त्री को दी गई वस्तु को स्त्रीधन कहा जाता है"।

बनारस शाखा—मिताक्षरा।

बनारस शाखा में सर्वोच्च प्रमाण मिताक्षरा है, जिसका पूरे भारत में आदर किया जाता है[8]। विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य के श्लोक को उसकी स्त्रीधन की परिभाषा के आधार के रूप में ग्रहण करते हुए, इस विषय से सम्बन्धित पहले श्लोक की निम्नलिखित व्याख्या की है (II–143) :—

"पिता, माता, पति अथवा भ्राता द्वारा जो कुछ दिया जाए, विवाह के समय वैवाहिक अग्नि के समक्ष मामा आदि द्वारा जो कुछ भी भेंट दी जाए, पति द्वारा दूसरी स्त्री से विवाह करने पर जो भेंट या उपदान दिया जाए तथा जैसा कि "आद्य" (अर्थात् इसके समान अन्य) शब्द द्वारा उपदर्शित है निम्नलिखित अर्थात् :—

उत्तराधिकार, क्रय, विभाजन, परिग्रह (प्रतिकूल कब्जा) और उपलब्धि से प्राप्त सम्पत्ति को मनु आदि ने स्त्रीधन कहा है[9]।"

---

1. बनर्जी, मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), लैक्चर 9, पृष्ठ 400।
2. बौधायन, प्रश्न II, खण्ड II, 27, बनर्जी मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 369।
3. मनु, IX, 187।
4. मनु VIII, 416।
5. बनर्जी, मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 369 और 373।
6. पी० एस० शिव स्वामी अय्यर, इवोल्यूशन ऑफ हिन्दू लॉ एण्ड ऑडियल्स (कमला लैक्चर्स) कलकत्ता, विश्वविद्यालय (1935), पृष्ठ 65।
7. याज्ञवल्क्य 11, 143, 144। मूल श्लोक इस प्रकार है :—
   पितृमातृपतिभ्रातृदत्त मध्यग्न्युपागतम्।
   आधिवेदनिकाद्यंच स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥ 143 ॥
8. बनर्जी, मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 328।
9. मिताक्षरा, अध्याय II, धारा XI, 2। यह अनुवाद बनर्जी की मैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 328 से लिया गया है।

विज्ञानेश्वर आगे कहते हैं कि : "स्त्रीधन" शब्द का आशय उसकी व्युत्पत्ति के अनुरूप है और यह तकनीकी नहीं है क्योंकि यदि शाब्दिक भाव ग्राह्य हो तो इसका तकनीकी अर्थ लेना अनुपयुक्त होगा[1] ।"

3.30. इस प्रकार मिताक्षरा के अनुसार "स्त्रीधन" शब्द में वह सारी सम्पत्ति सम्मिलित है जो स्त्री की है और इसमें ऐसी सम्पत्ति पर उसके प्रभुत्व के सम्बन्ध में कहीं भी कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किया गया है। उसकी सम्पत्ति का उपयोग करने के सम्बन्ध में उसके पति और अन्य संबंधियों पर निर्बंधन और प्रतिषेध लगाए गए हैं, किन्तु स्वयं स्त्री पर ऐसा कोई निर्बंधन या प्रतिषेध नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस विषय में कि स्त्रीधन के अन्तर्गत कौन-सी सम्पत्ति आती है मनु के विचारों के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, "मिताक्षरा" में यह कहा गया है कि : मिताक्षरा में संकल्पना।

> "मनु ने स्त्री की सम्पत्ति के जो छह प्रकार बताए हैं उनका आशय यह नहीं है कि इससे अधिक कोई सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं हो सकती है अपितु उसका आशय यह है कि गिनाई गई सम्पत्तियों में से किसी को, 'स्त्रीधन' से बाहर नहीं दावा जा सकता है।"

विज्ञानेश्वर का यह कथन, कि स्त्रीधन को उसके तकनीकी अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए (मिताक्षरा, अध्याय II, धारा 11 अनुसूची 3) केवल भाषा शास्त्रीय संप्रेक्षण नहीं है। "उस प्रतिपादना का उल्लेख करके, विज्ञानेश्वर को और उन अन्य महान टीकाकारों को, जिन्होंने उसका अनुसरण किया पुरातन स्मृति--विधि में फायदाप्रद परिवर्तन करने में सफलता मिली, और उन्होंने स्त्री को समानता के आधार पर सम्पत्ति धारण करने की क्षमता के सम्बन्ध में लगभग पुरुष के समकक्ष रखा[2] ।"

दुर्भाग्यवश प्रीविकाउंसिल ने टीकाकार के इस मत को, जो उदार और सही थी, अस्वीकार कर दिया[3] । मुल्ला की टिप्पणी निम्नलिखित है[4] :

> "अन्ततः यह दृष्टव्य है कि न्यायिक समिति ने बार-बार यह चेतावनी देने के बाद भी कि भारतीय न्यायालयों को हिन्दू विधि, स्मृतियों से नहीं बल्कि टीकाओं से लेनी चाहिए, विज्ञानेश्वर की 'अद्य' शब्द की सम्पूर्ण व्याख्या को अस्वीकार कर दिया।"

9. हाल में हुए विकास

3.31. न्यायिक और विधायी क्षेत्र में तत्पश्चात् हुए विकास आधुनिक इतिहास के विषय हैं, और उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। अतः हम छठे काल का विस्तार के साथ वर्णन नहीं करेंगे। इस काल की एक मुख्य बात हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 है। छठा काल।

3.32. हिन्दू स्त्री के अधिकार सम्बन्धी इस चर्चा को समाप्त करने के पूर्व हम "स्त्रीधन" के स्वरूप और उद्भव पर सर हेनरीमेन[5] के निम्नलिखित संप्रेक्षणों की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे :— स्त्रीधन के विषय में सर हेनरीमेन की टिप्पणी।

> "विवाहित स्त्री की उस सम्पत्ति को जिसका अन्य संक्रामण उसका पति नहीं कर सकता है, हिन्दुओं में 'स्त्रीधन' के नाम से माना जाता है। निश्चय ही यह विलक्षण तथ्य है कि हिन्दुओं में इस स्थापना का विकास रोमवासियों में उसके विकास से बहुत पहले हुआ था। पाश्चात्य समाज में यह स्थापना परिपक्व हुई और उसमें सुधार हुआ किन्तु प्राच्य देशों में, विभिन्न प्रभावों के कारण इस स्थापना का स्वरूप और महत्व धीरे-धीरे घटता गया और आज उसका वह स्वरूप और महत्व नहीं रह गया है जो किसी समय उसका था।"

10. भारत और अन्यत्र में बदलती सामाजिक परिस्थितियां

3.33. इसके पूर्व कि हम अगले विषय की चर्चा करें, यह उल्लेखनीय है कि किसी भी देश में सामाजिक परिस्थितियां एक सी नहीं रहतीं। यह बात अन्य देशों के लिए भी उतनी ही सच है जितनी भारत के लिए। उदाहरण के लिए यूनान को ले लीजिए। होमर[6] के युग में स्त्रियों को पेरकिल्स[7] के युग की स्त्रियों की अपेक्षा समाज में बहुत अधिक आदरणीय यूनान के उदाहरण।

---

1. मिताक्षरा, अध्याय II धारा XI.31।
2. सालेम्मा बनाम लक्ष्मण, (1898) आई० एल० आर० मद्रास 100, 103।
3. भगवानदीन बनाम मिने बाल (1867) 11 एम० आई० ए० 487।
4. मुल्ला, हिन्दू लॉ (1974), पृष्ठ 168।
5. मेन अर्ली हिस्ट्री ऑफ इन्स्टीट्यूशन्ज, पृष्ठ 321--324, जो बनर्जी द्वारा, गैरिज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 397 में उद्धृत की गई है।
6. सम्भवतः 850 ई० पू०, देखिए ओ०डी०सी० (रीडर्स इनरिचमेन्ट एडिसन), रीडर्स सप्लीमेंट पृष्ठ 8 और एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटा० जिल्द 10, पृष्ठ 793, बाईं ओर।
7. लगभग 445—431 ई० पू०।

स्थान प्राप्त था। होमर के ओडिसी महाकाव्य में अनेक स्त्री पात्रों के चरित्रों[1] का वर्णन यह बताता है कि उस समय स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

होमर द्वारा चित्रित दिव्य आकृतियों से यह और भी अधिक प्रकट होता है। प्रज्ञा की देवी–एथीन–ओडिसी[2] सबसे प्रमुख चरित्र है जिसने पूरे महाकाव्य में नायक का मार्गदर्शन किया है। यूनान में न्याय की देवी भी एक स्त्री थी जिसका नाम थेमिस था।

यद्यपि होमर के काल में यूनानी समाज पितृतंत्रात्मक था तथापि यूनानी स्त्री का जो वर्णन होमर ने किया है उससे पता चलता है कि वह मात्र जंगम वस्तु नहीं थी। पुरुष और स्त्री के बीच अच्छे व्यक्तिगत संबंधों का बहुत मूल्य होता था—जैसा कि ओडिसस (ओडिसी के नायक) द्वारा राजा अल्सिनस की पुत्री नौसिका को दिये गये आशीर्वाद से स्पष्ट है।

वह आशीर्वाद इस प्रकार था[3-4] :

> "..... ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूरी करे, वह तुम्हें पति और घर तथा ऐसी समरसता प्रदान करे जिसकी बहुत अधिक वांछा की जाती है, क्योंकि इससे अधिक अच्छी और प्रशंसनीय बात कोई नहीं है कि दो व्यक्ति एक दूसरे से सम्पूर्णतः सहमत होकर पति और पत्नी के रूप में समझबूझ के साथ इस प्रकार घर चलाएं कि उनके शत्रु चकित हो जाएं और उनके मित्रों को आनन्द प्राप्त हो।"

3.34. इसके विपरीत पेरिक्लिस (492–429 ई० पू०) ने स्त्रियों के लिये साधारण भूमिका सोची थी, जैसा कि उसके कथन से स्पष्ट है कि "उस स्त्री की कीर्ति महान है जिसके नाम की अच्छाई या बुराई के लिये लोग चर्चा नहीं करते हैं[5]।

अब हम होमर के काल की तुलना उस पश्चात्वर्ती सामाजिक पृष्ठभूमि से करेंगे जिसमें प्लेटो (428–347 ई० पू०) ने रिपब्लिक लिखा था।

स्त्रियों की शिक्षा के संबंध में और साधारणतः सामाजिक संगठन के बारे में प्लेटो के विचार, अनेक दृष्टि से अपने समय से पूर्व थे। किन्तु इस तथ्य से कि उसे स्त्रियों को समानता का अधिकार देने के लिये दृढ़ और जोशिला तर्क देना पड़ा था, इस बारे में कोई शंका नहीं रह जाती है कि वास्तविक परिस्थितियां स्त्रियों के लिये बहुत अनुकूल नहीं थीं। अपने आदर्श राष्ट्र[6] की संकल्पना में प्लेटो का एक सुझाव यह था कि पुरुषों और स्त्रियों को समान शिक्षा दी जानी चाहिये और उनके व्यवसाय भी समान होने चाहियें[7]। इस सुझाव ने उसके कुछ समकालीन व्यक्तियों को स्तंभित कर दिया था।

रिपब्लिक[8] के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों को समान दी जानी चाहिये और उन्हें सभी सार्वजनिक कार्यों में समान रूप से भाग लेना चाहिये। एथेंस में स्त्रियां अलग-थलग रहती थीं और वे राजनीति में भाग नहीं लेती थीं अतः वहां इस प्रस्ताव को एक क्रान्तिकारी प्रस्ताव के रूप में माना गया।

वास्तव में, आगे चल कर लिखे गए एरिस्टोफेन्स के सुखांत नाटक अर्थात् एक्सलेसिआजु से (संसद् में स्त्रियां) की यही विषयवस्तु है।

प्लेटो के विचारों की गुणवत्ता काल और स्थान की सीमाओं के परे थी और रिपब्लिक और लाज में उसने जो मुख्य बातें कहीं हैं उनसे उसके काल की वास्तविक दशाओं के सर्वेक्षण की अपेक्षा एक योजना दर्शित होती है।

एन्टीगोन[9] नाटक में इस्मेन के भाषण की तुलना कीजिये जहां वह कहती है :

> "जरा सोचो तो, एन्टीगोन, हम स्त्री हैं, पुरुषों के विरुद्ध लड़ना हमारा कार्य नहीं है[10]।"

---

1. उदाहरणार्थ—नौसीका और योरिक्लीया ओडिसयस की नर्सें), और अरेटा। नौसीका के लिए देखिए ओडीसी, बुक I, III, V, III, ओरेटा (अलसेनस की पत्नी) के लिए, देखिए बुक VII।
2. ओडिसी, बुक VI, रीडर्स एनरिचमेंट एडीसन, पृष्ठ 58—66।
3. ई० वी० रीयु (सम्पादक) ओडिसी (पेनगुइन क्लासिकल) (1973) बुक VI, पृष्ठ 107।
4. तुलना करिए : रीडर्स एनरिचमेंट एडीशन ऑफ ओडिसी (वाशिंगटन स्क्वायर प्रेस) (1966), पृष्ठ 82।
5. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, जिल्द 7, एजुकेशन हिस्ट्री ऑफ पृष्ठ 984, बांईं तरफ।
6. लगभग, 429 ई० पू०।
7. समसामयिक प्रतिक्रियाओं के सम्बन्ध में देखिए, जी० सी० फील्ड, प्लेटो एंड हिज कन्टेम्पोरेरीस (1930)।
8. लेटो रिपब्लिक, पार्ट II, बुक V, 445 बी से 457 बी, कार्नफोड ए०डी० (1946) पृष्ठ 141, 150, 151।
9. सोफोक्लीज एन्टीगोन।
10. एन्टीगोन, 45—127, सोफोक्लीज, थेवान प्लेज (पेनाडइन लासिक्स)। (1975 रिप्रिंट) 128।

ऊपर दिये गये उद्धारण से यह ध्वनित होता है कि वास्तविकता यह थी कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति में कुछ विशेषता थी ।

11. मुस्लिम स्त्रियां

3.35. अब तक हमने हिन्दू स्त्रियों के बारे में चर्चा की है । जहां तक मुस्लिम स्त्रियों की विधिक स्थिति का संबंध है, यह सुस्थापित है कि मुस्लिम विवाहित स्त्री को सभी विधिगत कार्य (अर्थात् ऐसे कार्य जिनके संबंध में विधि की यह मान्यता है कि वह अधिकारों और दायित्वों को प्रभावित करते हैं) करने के लिये साधारणतः वही शक्तियां प्राप्त है जो उसे अविवाहित रहने पर प्राप्त होती हैं । किन्तु ऐसे मामलों में जिसके बारे में उसके अधिकार और दायित्वों को विवाह संविदा स्वयं बदल देती है, यह बात नहीं है । मुस्लिम स्त्रियां।

3.36. इस्लाम ने रोमन ला[1] के "मेनुस" जैसी किसी चीज को मान्यता नहीं दी है और न इस बात को स्वीकार किया है कि पत्नी और पति के व्यक्तित्व का एक दूसरे में विलय हो जाता है ।

3.37. मुस्लिम पत्नी को, तदनुसार, अपने पति की सहमति के बिना अपनी सम्पत्ति का दान, विक्रय या पट्टे द्वारा व्ययन करने की शक्ति प्राप्त है[2] यह उसकी स्वतंत्र प्रास्थिति का एक उदाहरण है ।

मुस्लिम विधि में एकता के सिद्धान्त को मान्यता न मिलने के कारण पत्नी को उसके दोषसिद्ध ठहराया जा सकता है[3]।

3.37क. अमीर अली ने अपनी पुस्तक स्पिरिट आफ इस्लाम[4] में यह लिखा है कि इस्लाम को प्रारंभिक शताब्दियों में स्त्रियों का समाज में उतना ही ऊंचा स्थान था जितना आधुनिक समाज में है । वह हारुत की पत्नी जुवैदा का उदाहरण देते हैं जिसने उस युग के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । अमीर अली के अनुसार फारूख की पत्नी हुमैदा ने जो मदीना की रहने वाली थी और जो अपने अवयस्क पुत्र ख्या-र-रे की एक मात्र संरक्षक थी, अपने पुत्र को उस समय का सर्वाधिक प्रख्यात विधि परामर्शी बनाने के लिये शिक्षा दी थी । स्त्रियों का प्रतिष्ठित पद।

अमीर अली, स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिये पैगम्बर द्वारा किये गये उन प्रयासों का भी वर्णन करते हैं जिनको सभी निष्पक्ष लेखकों ने स्वीकार किया है । यह कहते हैं "उस अध्यापक के प्रति जिसने ऐसे युग में जबकि किसी देश ने, किसी पद्धति ने, किसी समुदाय ने स्त्रियों को, चाहे वह कुंवारी हों या विवाहित हों, माता हो या पत्नी हो कोई अधिकार नहीं दिया, और ऐसे देश में जहां पुत्री का जन्म एक संकट माना जाता है, स्त्रियों के लिये उन अधिकारों को प्राप्त किया जो कि बीसवीं शताब्दी में सभ्य देशों द्वारा उनको केवल अनिच्छा से और दबाव डालने पर दिये जा रहे हैं, मानवता अभारी है । यदि मुहम्मद ने और कुछ नहीं किया होता तो भी मानवता के हिताभिलाषी होने का उनका दावा निर्विवाद होता । यहां तक कि आज की विधियों के अधीन मुस्लिम स्त्रियों की विधिक स्थिति यूरोपीय स्त्रियों की तुलना में अच्छी कही जा सकती है" ।

3.38. इसी लेखक[5] ने विधिक स्थिति का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है :— मुस्लिम स्त्रियों के बारे में विधिक स्थिति ।

> "पत्नी के पक्ष में पति द्वारा किया गया विवाह पर्व समझौता एक आवश्यक शर्त है और उसके द्वारा समझौता न किये जाने पर विधि की उपधारणा पत्नी की सामाजिक स्थिति के अनुसार ही होगी । मुस्लिम विवाह एक सिविल कार्य है जिसमें पुजारी की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी उत्सव की । विवाह की संविदा से पुरुष को स्त्री के शरीर पर, विधि में परिभाषित सीमा से परे कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती और उसके माल और सम्पत्ति पर तो कुछ भी नहीं । मां के रूप में उसके अधिकार की मान्यता न्यायाधीशों की सनक पर निर्भर नहीं करती है । अपने परिश्रम से अर्जित उसके उपार्जन का अपव्यय उसके अपव्ययी पति द्वारा नहीं किया जा सकता और न ऐसे पति द्वारा जो क्रूर है, उसका तिरस्कार करते हुए उसके साथ दुर्व्यवहार किया जा सकता है । वह उन सभी मामलों में जिनका उससे और उसकी सम्पत्ति से संबंध होता है अपने व्यक्तिगत अधिकार से, पति या पिता के

---

1. पूर्वगामी पैरा 3.5 ।
2. निछाभाई ब० इस्से खान अब्दुला खान (1866) 2 बम्बई एच० सी० आर० 297, त्याजी मुस्लिम (1968) पृष्ठ 57, पाद-टिप्पण 23 ।
3. (क) देखिए, लाला कुन्दन लाल मुसम्मात मुशरंफी, (1936) 40 सी० डब्ल्यू० एन 1903 (प्री० कौ०) ।
   (ख) लतीफनिसा वा सैयद रजूर रहमान (1867) 8 डब्ल्यू० आर० 84 (कल०) ।
   (ग) आर० ब० खतो बाई (1869) 6 बम्बई एच० सी० आर० (कि० के०) 9 ।
4. अमीर अली, स्पिरिट ऑफ इस्लाम (क्रिस्टोफर्स लन्दन) (1953) रिप्रिंट पृष्ठ 254-255 ।
5. अमीर अली, स्पिरिट ऑफ इस्लाम (क्रेस्टोफर्स लन्दन) (1953), पृष्ठ 257 ।

हस्तक्षेप के बिना, अपने ही ढंग से काम करती है। वह अपने देनदारों पर किसी वाद मित्र की सहायता के बिना या अपने पति के नाम की आड़ लिये बिना वाद ला सकती है। वह अपने पिता के घर से निकल कर अपने पति के घर आने के पश्चात् भी उन सभी अधिकारों का प्रयोग करती रहती है जो विधि द्वारा पुरुषों को प्राप्त हैं। वे सभी विशेषाधिकार जो स्त्री और पत्नी के रूप में उसके होते हैं उसे प्राप्त हैं। ये विशेषाधिकार उस सौजन्य के नाते नहीं जो बदलता रहता है, बल्कि विधि पुस्तक में वस्तुतः किये गए उपबन्ध के कारण उसे प्राप्त हैं। समग्र रूप में कहा जाए तो उसकी प्रास्थिति बहुत सी यूरोपीय स्त्रियों से अधिक खराब नहीं है और कई मामलों में तो वह निश्चित रूप से उनसे बेहतर स्थिति में है। उसकी अपेक्षाकृत पिछड़ी हालत पुरखों के कानून में किसी विशेषता के अभाव के कारण नहीं बल्कि आमतौर पर समुदाय में वह संस्कृति के अभाव के कारण है।"

प्रशासन में मुस्लिम स्त्रियां।

3.38 क. प्रशासन के क्षेत्र में बहुत स्त्रियों ने जैसे रजिया बेगम (1236–1239) और चांद बीबी[1] (16वीं शताब्दी) ने, अपनी श्रेष्ठता दर्शित की है। यह उल्लेखनीय है कि चांद बीबी अहमदनगर के किले की प्राचीर पर मर्दाने वेश में उपस्थित हुई और उसने अकबर के साथ (1595–1596 ई० में) हुए युद्ध में उसकी शक्ति के विरुद्ध नगर के रक्षकों का हौसला बढ़ाया। नूरजहां ने प्रशासन कार्य में जिस तरह भाग लिया वह सर्वविदित है।

12. सांविधानिक उपबन्ध

संविधान का अनुच्छेद 15 और 16।

3.39. भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 और 16 में लिंग के आधार पर स्त्रियों के विरुद्ध सभी विभेद का पूर्णतः प्रतिषेध किया गया है। अनुच्छेद 15 का तो विशेष महत्व है। इसमें निम्नलिखित उपबन्ध है :—

"15(1) राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

(2) इस अनुच्छेद को किसी बात से राज्य को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपबन्ध बनाने में बाधा न होगी।"

इस उपबन्ध की न्यायालयों के समक्ष कई बार दुहाई दी जा चुकी है।

निर्णयन–विधि।

3.40. हाल ही में यह अभिनिर्धारित[2] किया गया है कि यद्यपि राज्य स्त्रियों के लिये विशेष उपबन्ध बना सकता है तथापि राज्य केवल लिंग के आधार पर उनके विरुद्ध विभेद नहीं कर सकता। इस आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह नियम जिसमें यह अभिकथित है कि स्त्रियां किसी ब्रह्मोत्तर अनुदान की उत्तराधिकारी नहीं हो सकतीं, लिंग के आधार पर पुरुष और स्त्रियों के बीच विभेद करता है। "उपबन्ध का सरल निर्वचन किया जाए तो यह अनुच्छेद 15 का उल्लंघन है और इसलिये यह शून्य है।"

13. गांधी जी और टैगोर के विचार

गांधी जी के विचार।

3.41. इस चर्चा को समाप्त करने के पूर्व गांधी जी और टैगोर द्वारा संजाए गए आदर्शों के प्रति निर्देश करना उचित होगा। सन् 1918 के आरम्भ में दिये गये एक भाषण में गांधी जी ने कहा था[3]।

"स्त्री पुरुष की सहचरी है जिसको बौद्धिक क्षमता पुरुष के बराबर है। उसे पुरुष के क्रियाकलाप में हर प्रकार से भाग लेने का अधिकार है, और उसे पुरुष के समान ही स्वतंत्रता का अधिकार है।"

3.42. सन् 1929 में गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' में पुनः लिखा था कि[4] :—

"स्त्रियों के अधिकारों के मामले में मैं किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकता हूं। मेरी राय में उसमें ऐसी कोई विधिक निर्योग्यता नहीं होनी चाहिए जो पुरुष में न हो। मैं पुत्रों और पुत्रियों को बिल्कुल एक जैसा जानता हूं।"

---

1. के० एम० पणिकर, "दि मिडिल पीरियड" वेग (सम्पादक) विमेन ऑफ इण्डिया (1958), पृष्ठ 9, 10, 11 पर।
2. भूलानाथ ब० राज्य, ए० आई० आर० 1974 उड़ीसा 135, 139।
3. मुखर्जी गोखले हाल में तारीख 20 फरवरी, 1918 को दिया गया गान्धी जी का भाषण जो "टू दी वीमन" में पुनर्मुद्रित हुआ। पृष्ठ 18।
4. 'यंग इण्डिया' के तारीख 17 अक्टूबर, 1929 के अंक में प्रकाशित गान्धी जी का लेख जो "टू दी विमन' में पुनः मुद्रित हुआ। पृष्ठ 12।

3.43. इस प्रक्रम पर हम यह कह सकते हैं कि स्त्री की स्थिति में देश में साधारण सामाजिक परिस्थितियों का एक प्रतिबिम्ब होती है। इसका उदाहरण टैगोर की कृतियों से दिया जा सकता है। टैगोर के उपन्यासों, नाटकों और कविताओं की प्रमुख स्त्री पात्र (चरित्र) भारत के बदलते सामाजिक परिवेश का विशेष रूप से 1875 से 1941 तक के बंगाल का चित्रण करती हैं[1]। एक लेखक के शब्दों में "वे भारतीय समाज के परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती हैं।" स्त्री की प्रास्थिति साधारण सामाजिक परिस्थिति का प्रतिबिम्ब।

टैगोर की कृतियों में चित्रित समय-काल की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठ भूमि का विस्तृत विश्लेषण किया जाए तो उससे स्पष्ट होगा कि उनकी नायिकाएं उस काल की विशिष्ट देन थीं जिस काल में उनका निर्माण किया गया था या जो कुछ मामलों में वे टैगोर के रचनात्मक जीवन के छियासठ वर्षों के दौरान ग्राम्य और नगरीय समाज के एक दूसरे से भिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करती रहीं हैं। इस महान लेखक ने गहन कल्पना शक्ति और वस्तुपरक तथा समालोचनात्मक अन्तरदृष्टि से न केवल अपने अधिकारों के लिए बल्कि पद-दलित मानवों के अधिकारों के लिए भी लड़ रहीं भारतीय स्त्रियों के स्वातन्त्र्य के विभिन्न प्रक्रमों को अत्यन्त प्रभावी रूप में चित्रित किया है।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि टैगोर की नायिकाएं अपने युग की उपज मात्र हैं। कवि के दिव्य स्पर्श ने उन्हें सार्वभौमिक व्यक्तित्व प्रदान किया है। कवि ने उन्हें "इस अलौकिक प्रकाश से जो सागर या पृथ्वी पर कभी नहीं था" आलौकित कर दिया और उन्हें अविस्मरणीय और अमर बना दिया।

14. निष्कर्ष

3.44. हम इस अध्याय को ऋग्वेद के उस श्लोक को उद्धृत करके समाप्त करेंगे जो स्त्री की स्थिति के बारे में कहा गया है। पत्नी की भूमिका की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि[2] :— ऋग्वेद का श्लोक।

साम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु: ।।

हमें उपर्युक्त श्लोक[3] का शाब्दिक अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं है। सरल शब्दों में इसका भाव इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

"हे वधू, तुम अपने स्वसुर की गृहस्थी पर एक सम्राज्ञी के समान शासन करो, एक सम्राज्ञी के समान अपनी सास की प्रशंसा प्राप्त करो, एक सम्राज्ञी के समान अपनी ननद का प्यार प्राप्त करो और एक सम्राज्ञी के समान अपने देवर का आदर प्राप्त करो।"

3.45. हम इस बारे में अनभिज्ञ नहीं हैं कि कुछ स्मृतियों में ऐसे श्लोक हैं जिनमें स्त्रियों की पराधीनता[4] का उल्लेख किया गया है या जिनमें कहा गया है कि स्त्रियों के लिए पराधीनता आवश्यक है या यह कि स्त्रियां आत्म-निर्भरता प्राप्त नहीं करती हैं। यह कहा जाता है कि इस सम्बन्ध में इन्हीं स्मृतियों से ऐसे श्लोक भी पाए जाते हैं जो उस सम्मान और आदर का समर्थन करते हैं जो स्त्रियों को मिलना चाहिए[5-6]। पराधीनता के विषय में विचार।

इसके अलावा यह भी हो सकता है कि समय के साथ-साथ स्त्रियों की उचित प्रास्थिति के बारे में भावनाओं में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। इस तथ्य के कारण दोनों प्रतिरोधी विचार इन पवित्र ग्रन्थों में पाए जाते हैं।

---

1. विमान बिहारी मजूमदार, हीरोइन्स ऑफ टैगोर : ए स्टडी इन दी ट्रान्सफार्मेशन ऑफ इण्डियन सोसाइटी 1875—1941 (फर्म के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता 1968)।
2. ऋग्वेद, मण्डल 10, सूक्त 85, श्लोक 46।
3. (क) राल्फ ग्रिफिथ, हिम्स ऑफ दि ऋग्वेद (चौखम्बा) संस्कृत स्टडीज, सिरीज सं० 35, जिल्द 2, पृष्ठ 506, मंडल 10, सूक्त 85, श्लोक 46।
   (ख) एच० एम० विलसन, ट्रांसलेशन ऑफ दि ऋग्वेद, जिल्द 4 पृष्ठ 152. 46 (1928 पुनर्मुद्रण) एच० आर० भगत पूना द्वारा आप्टेकर ऐंड की मार्फत—प्रकाशित।
4. (क) याज्ञवल्क्य 1.85।
   (ख) मनु IX 3।
   (ग) बौद्धायन II 3.44।
5. वशिष्ठ V 3।
6. याज्ञवल्क्य 1.82।

उस विषय की बाबत जिसकी चर्चा इस धारा में की गई है, भारत की राज्य क्षेत्रीय विधि से शासित होंगे। जैसा कि न्यायमूर्ति मार्कबी ने कहा है[1] : उस सीमा तक "अन्तर्राष्ट्रीय विधि या राष्ट्रों के कॉमन लॉ को अपास्त या उपांतरित कर दिया गया है।"

2. बीमा अधिनियम

बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38-39।

5.5. अब हम बीमा अधिनियम, 1938 के कुछ उपबन्धों की चर्चा करेंगे जो जीवन बीमा पालिसियों के समनुदेशन और नाम-निर्देशन के प्रश्न के बारे में हैं और इस विषय की चर्चा विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 में भी की गई है[2]। 1938 में बीमा अधिनियम के अधिनियमन के पूर्व साधारण नियम यह था कि किसी व्यक्ति को जिसका नाम पालिसी में ऐसे व्यक्ति के रूप में हो जिसे पालिसी के अधीन शोध्य रकम का संदाय किया जाना है, केवल इस कारण कि पालिसी में उसके नाम का उल्लेख है, पालिसी के अधीन कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते थे और उसके लिए यह आवश्यक था कि वह उत्तराधिकार प्रमाण-पत्र या प्रशासन पत्र प्राप्त करे[3]। साधारणतः पालिसी का समनुदेशन सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 द्वारा, अनुयोज्य दावे के रूप में शासित होता था[4] किन्तु जहाँ विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 प्रवृत्त हो वहां ऐसा नहीं था। यह स्थिति बीमा अधिनियम, 1938 द्वारा बदल दी गई थी, अधिनियम की धारा 38 जीवन बीमा पालिसियों के समनुदेशन और अन्तरण के सम्बन्ध में है। उपधारा 1 में यह उपबन्ध है कि जीवन बीमा की पालिसी का अन्तरण या समनुदेशन चाहे वह प्रतिफल के लिए हो या उसके बिना हो, पालिसी पर केवल पृष्ठांकन द्वारा ही किया जा सकेगा या किसी भी दशा में ऐसी अन्तरण करने वाले या समनुदेशन करने वाले द्वारा या उसके प्राधिकृत अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित और कम से कम एक साक्षी द्वारा अनुप्रमाणित किसी पृथक हस्तांतर पत्र द्वारा किया जा सकेगा जिसमें अन्तरण या समनुदेशन के तथ्य का वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से कि समनुदेशन या अन्तरण पूरा हो और पक्षकारों के बीच प्रभावी हो यह पर्याप्त है, किन्तु बीमाकर्ता के विरुद्ध किसी अन्तरण या समनुदेशन के पूरा और प्रभावी होने के लिए यह भी आवश्यक है कि अन्तरण या समनुदशन की लिखित सूचना दी जाए और उक्त अधिनियम की धारा 38(2) में यथा उपबन्धित कुछ अन्य औपचारिकताओं का पालन किया जाए।

बीमा अधिनियम की धारा 39 में जीवन बीमा पालिसी के धारक द्वारा नाम-निर्देशन करने का उपबन्ध है। जहां तक तात्विक है, उस धारा की उप धारा (1) में यह उपबन्ध है कि धारक पालिसी लेते समय या संदाय के लिए पालिसी के परिपक्व होने के पूर्व किसी भी समय ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का नाम-निर्देशन कर सकेगा जिसको या जिनको उसकी मृत्यु होने की दशा में पालिसी द्वारा प्रतिभूत धन दिया जाएगा। धारा का शेष भाग धारा 38 के अधीन नाम-निर्देशन की कुछ औपचारिकताओं समनुदेशन या अन्तरण पर नाम-निर्देशन के प्रभाव और अन्य ऐसे संसक्त विषयों के जो हमारे प्रयोजन के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं, बारे में है। साधारणतः नाम-निर्देशित व्यक्ति धन प्राप्त करने वाले किसी अभिकर्ता से अधिक कुछ नहीं है और यह वह धन है जो बीमाकृत व्यक्ति की सम्पत्ति बनी रहती है और बीमाकृत अपने जीवनकाल में उसका व्ययन अपनी इच्छा से कर सकता है तथा उसकी मृत्यु पर यह सम्पदा का एक भाग बन जाता है। हमारे प्रयोजनों के लिए धारा 39 की उप धारा (7) महत्वपूर्ण है और यह इस प्रकार है :—

> "(7) इस धारा के उपबन्ध जीवन बीमा की किसी ऐसी पालिसी को लागू नहीं होंगे जिसको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 लागू होती है या किसी समय लागू हुई है :
>
> परन्तु जहां बीमा (संशोधन) अधिनियम, 1946 के लागू होने के पूर्व या पश्चात् ऐसे व्यक्ति की जिसने अपना या अपनी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी का जीवन बीमा कराया है, पत्नी के पक्ष में किए गए नाम-निर्देशन की बाबत प्रत्यक्षतः पालिसी पर या अन्यथा यह अभिव्यक्त है कि वह इस धारा के अधीन किया जा रहा है वहां उक्त धारा 6 की बाबत यह समझा जाएगा कि वह पालिसी को लागू नहीं होती है या लागू नहीं हुई थी।"

धारा 39(7) का उद्देश्य।

5.6. धारा 39(7) और परन्तुक का, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, मिला-जुला प्रभाव बीमा अधिनियम के अधीन नाम-निर्देशन और विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम के अधीन न्यास के बीच दीवार खड़ी करना है।

---

1. मिलर ब० एडमिनिस्ट्रेटर जनरल (1874) आई० एल० आर० 1 कल० 412।
2. आगामी अध्याय 8।
3. ए० आई० आर० 1935 रंगून 211, 212।
4. ए० आई० आर० 1955 मद्रास 459, 460।

इस स्कीम का आशय यह है कि जहां तक सम्भव हो इस सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न न हों कि किसी विशिष्ट मामले में किया गया कोई ठहराव बीमा अधिनियम के अधीन या विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम के अधीन आता है। जहां (1) ठहराव "नाम-निर्देशन" के रूप में है, किन्तु (2) यह अभिव्यक्त नहीं है कि वह बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन किया गया है, वहां ऐसा संविवाद अभी भी उत्पन्न हो सकता है। इस स्थिति से किसी आज्ञापक उपबन्ध द्वारा नहीं निपटा जा सकता है और इसलिए विनिश्चय प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा[1]।

3. सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम

5.7. हमारे प्रयोजन के लिए अगला महत्वपूर्ण उपबन्ध सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 में अन्तर्विष्ट है जो साधारणतः "प्रत्याशा पर अवरोध" कहे जाने वाले विषय के बारे में है। यह धारा इस प्रकार है :— सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10—प्रत्याशा पर अवरोध।

> "10. जहां कि सम्पत्ति ऐसी शर्त या मर्यादा के अध्यधीन अन्तरित की जाती है, जो अन्तरिती या उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को सम्पत्ति में अपने हित को अलग करने या व्ययनित करने से आत्यन्तिकतः अवरुद्ध करती है वहां ऐसी शर्त या मर्यादा शून्य है, सिवाय ऐसे पट्टे की दशा के जिसमें कि वह शर्त पट्टाकर्ता या उसके अधीन दावेदारों के फायदे के लिए हो :
>
> परन्तु सम्पत्ति किसी स्त्री को (जो हिन्दू, मुसलमान या बौद्ध न हो) या उसके फायदे के लिए इस प्रकार अन्तरित की जा सकेगी कि उसे अपनी विवाहित स्थिति के दौरान में उस सम्पत्ति को या उसमें के अपने फायदेप्रद हित को अन्तरित या भारित करने की शक्ति न होगी।"

साधारण नियम यह है कि सम्पत्ति अन्तरण की वे शर्तें जो अन्यसंक्रामण अवरुद्ध करती हैं अकृत और शून्य होती हैं। यही नियम धारा 10 के मुख्य पैरा में है। इस धारा का परन्तुक एक अपवाद है। यह स्मरण रहे कि कामन लॉ में एकता के सिद्धांत के कारण पत्नी को अपने पति से स्वतंत्र रूप में, अपने पृथक फायदे के लिए अपनी सम्पत्ति के व्ययन की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती थी किन्तु ईक्विटी (साम्या) में न्यासियों को पत्नी के लिए अलग से न्यास के रूप में सम्पत्ति के दिए जाने की अनुज्ञा थी। पत्नी के लिए **अलग से उपभोग के लिए** न्यासियों को इस प्रकार दी गई सम्पत्ति का उपयोग पत्नी, ईक्विटी में ऐसे कर सकती थी मानो वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) हो।

5.8. किन्तु इसके बावजूद पति अपनी इच्छानुसार सम्पत्तियों के व्ययन के लिए पत्नी को "नैतिक रूप से प्रभावित"[2] कर सकता था। इस दृष्टि से ऐसे प्रभाव के प्रयोग न किये जा सकें, ईक्विटी न्यायालयों ने उस सम्पत्ति को जो विवाहित स्त्री के पृथक उपयोग के लिए स्थिर की गई है, उसके व्यक्तिगत फायदे के लिए इस प्रकार से बांध दिए जाने की अनुज्ञा दी कि पति आश्रय (कोवर्चर) के दौरान उसे अपनी आय की बाबत "प्रत्याशा" करने या उसका समनुदेशन करने की कोई शक्ति न हो। प्रत्याशा पर अवरोध की उत्पत्ति इसी से हुई है। ईक्विटी (साम्या) में स्थिति।

टुलेट बनाम आर्मस्ट्रांग वाले मामले में[3] लार्ड लैंग डेल एम० आर० ने प्रत्याशा पर अवरोध वाले एक खण्ड की विधिमान्यता की चर्चा करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि "पृथक उपयोग के लिए सम्पदा का जो कोर्टस आफ ईक्विटी द्वारा मंजूर की गई है, केवल वैवाहिक स्थिति में अपना विशेष अस्तित्व है। यह पत्नी की सम्पत्ति पर उसके पति में निहित विधिक शक्ति के विरुद्ध विवाहित स्त्री की सुरक्षा के रूप में कार्य करती है वह पति के विधिक अधिकार का उल्लंघन करती है और उसका नियंत्रण करती है और उसकी विधिक शक्ति के विरुद्ध है अतः यह एक पर्याप्त संरक्षण है किन्तु अन्य संक्रामण की शक्ति पत्नी में ही रहती है और इसलिए पृथक् सम्पदा जिस पर कोई बंधन नहीं है, **पति के नैतिक प्रभाव के विरुद्ध** कोई संरक्षण प्रदान नहीं करती है और ऐसी अनेक घटनाएं हुई और प्रतिदिन होती रहती हैं जिनमें पत्नी अपने पति के मनाने पर या उसके प्रभाव में आकर अपनी अन्य संक्रामण शक्ति का अपने पति के पक्ष में या उसके लाभ के लिए प्रयोग करने के लिए उत्प्रेरित हुई है या होती है और इस प्रकार पत्नी के लिए आशयित संरक्षण विफल हो जाता है।"

"किन्तु पृथक् सम्पदा की उत्पत्ति और उसका समर्थन कोर्टस आफ इक्विटी के कारण है अतः ऐसा समझा जाता था कि वही न्यायालय इसे इस तरह से उपान्तरित कर सकता है कि उससे आशयित संरक्षण प्राप्त हो सके। तदनुसार लार्ड थरलो ने यह कहा था कि यदि किसी दान में यह स्पष्टतः अभिव्यक्त हो कि पृथक् सम्पदा प्रत्याशा में समनुदेशन के या अन्य संक्रामण के अयोग्य होगी तो उस आशय को कार्यान्वित किया जाना चाहिए और विद्वान न्यायाधीश ने अपनी यह

---

1. बीमा अधिनियम के बारे में कुछ सिफारिशों के लिए आगामी पैरा 8.42, 8.53, 8.54 और अध्याय 15 देखिए।
2. देखिए आगे, टुलैट ब० आर्मस्ट्रांग।
3. टुलेट ब० आर्मस्ट्रांग (1839) 49 : आर० आर० 280, 281।

राय होने के कारण एक मामले में स्वयं इसका उदाहरण प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत रूप से रुचि ली और लगभग अर्धशताब्दी पूर्व उस समय से विलों और व्यवस्थापनों में प्रायः एक खण्ड जोड़ा जाता है जिसमें स्त्रियों को उनके पति से स्वतंत्र रूप में उनके पृथक् उपयोग के लिए स्थावर और वैयक्तिक सम्पत्ति, प्रत्याशा के रूप में समनुदेशन की या अन्य संक्रामण की शक्ति के बिना दी जाती है और यद्यपि ऐसे खण्डों के प्रवर्तन को सम्पदाओं की परिसीमाओं तथा सम्पत्ति के विधिक आपतन को प्रभावित करने वाले साधारण विधि नियमों से विषम और अनमेल समझा जाता है और निःसंदेह ऐसा है भी, तथापि इन्हें इस न्यायालय द्वारा बारम्बार अनुमोदित और क्रियान्वित किया गया है तथा कुटुम्ब के लिए व्यवस्थापन और व्यवस्थाएं बहुत बड़ी सीमा तक इन्हीं खण्डों पर विश्वास करके बनाई गई हैं।

और जैकसन बनाम हाबहाउस[1] के मामले में लॉर्ड एल्डन ने जोर देकर यह घोषणा की थी कि "प्रत्याशा पर अवरोध वाले खण्ड की विधिमान्यता के विरुद्ध अब दलील पेश करना व्यर्थ है।"

अवरोध की संकल्पना पूरक है।

5.9. अतः अन्य संक्रामण पर अवरोध की संकल्पना विवाहित स्त्री की पृथक् सम्पत्ति की संकल्पना की पूरक थी। ईक्विटी में पृथक् सम्पत्ति के उपबन्ध ने कामन लॉ के नियम की कठोरता को कम करने में बहुत सहायता की। किन्तु इससे विवाहित स्त्रियों को अपने फायदाप्रद हित का अपने पति को समनुदेशन करने से और पृथक् उपयोग की व्यवस्था द्वारा जिस हित को पति के कब्जे में आने से रोकने का आशय था वह हित उसमें (पति में) निहित करने से रोका नहीं जा सकता और धन हड़पने वाले, फिजूलखर्च या दिवालिया पति के सामने प्रलोभन वास्तविक था। इसी स्थिति से बचने के लिए ईक्विटी ने प्रत्याशा पर अवरोध का विकास किया[2]। यह अवरोध तभी लगाया जा सकता था जब सम्पत्ति किसी स्त्री के पृथक् उपयोग के लिए हस्तांतरित की गई हो या वसीयत द्वारा दी गई है। और एक बार यह अवरोध लग जाने पर स्त्री किसी आय के सम्बन्ध में प्रत्याशा करने या संव्यवहार करने से तब तक निवारित हो जाती थी जब तक कि वह वास्तव में शोध्य न हो जाए। यह अवरोध कार्पस पर भी लगाया जा सकता था और प्रायः ऐसा होता भी था और उस दशा में कोवर्चर के दौरान सम्पूर्ण निधि पूरी तरह से अन्य-असंक्राम्य हो जाती थी।

प्रत्याशा पर अवरोध की परिकल्पना न केवल पत्नी को बल्कि उसके परिवार को भी जो उसकी मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति का हकदार होगा संरक्षा प्रदान करने के लिए की गई थी।

अविवाहित स्त्री के संबंध में स्थिति।

5.10. प्रत्याशा पर अवरोध किसी अविवाहित स्त्री की पृथक् सम्पत्ति पर भी लगाया जा सकता है। किन्तु इस दशा में, वह अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसे संव्यवहार कर सकती है मानो उस पर कोई अवरोध न हो और वह इस आशय का विलेख निष्पादित करके अवरोध को पूरी तरह से समाप्त कर सकती है। वह स्त्री भी जिसकी सम्पत्ति पर कोवर्चर के पूर्व या दौरान अवरोध लगाया गया है, अपने पति की मृत्यु के कारण या विवाह-विच्छेद के कारण समाप्त हुए विवाह के पश्चात् ऐसा कर सकती है। किन्तु ऐसे विलेख के न होने पर जैसे ही वह विवाह या पुनर्विवाह करती है, यह अवरोध उस सम्पत्ति के संबंध में प्रवृत्त हो जाता है जिसका उस समय अन्य संक्रामण नहीं किया गया जब वह अविवाहित (फेमी सोल) थी।

अवरोध का शिथिल किया जाना—1881 का ऐक्ट।

5.11. अवरोध से संपत्ति पति औरउसके लेनदारों के हाथों में आने से कारगर रूप से बची रही है, फिर भी इसमें एक स्पष्ट दोष था। ऐसे अनेक अवसर हो सकते हैं जिनमें यह पत्नी के हित में हो कि वह अवरोध के अधीन रहते हुए सम्पत्ति के संबंध में संव्यवहार करे किन्तु संसद् का कोई प्राइवेट अधिनियम ही इसे दूर कर सकता है। इसी कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से कन्वेयेंसिंग ऐक्ट, 1881 बनाया गया जिसने इंग्लैण्ड में न्यायालयों को यह शक्ति दी कि वे ऐसी सम्पत्ति में पत्नी के हित को आबद्ध करे परन्तु, यह तब जब कि यह उसके फायदे के लिए हो[3]। किन्तु न्यायालय केवल विशिष्ट व्ययन को आबद्धकर बना सकता था किन्तु उसे पूरी तरह से अवरोध को हटाने की साधारण शक्ति प्राप्त नहीं थी।

अवरोध का उत्सादन—1935 और 1949 के ऐक्ट।

5.12. लॉ रिफार्म्स इत्यादि ऐक्ट, 1935 द्वारा प्रत्याशा पर अवरोध भविष्य के लिए समाप्त कर दिया गया। फिर भी जो अवरोध लगाए जा चुके थे उनकी विधिमान्यता पर इस ऐक्ट का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूर्व विद्यमान अवरोध पत्नी के अन्य संक्रामण की शक्ति पर तब तक अनुचित नियंत्रण के रूप में कार्य करते रहे जब तक कि यह स्थिति नहीं हुई कि अवरोध को न्यायालय के आदेश द्वारा हटाया जा सकता था[4]। इससे व्यवहार में कुछ कठिनाइयां थीं विशेष रूप से इसलिए कि अब उस पत्नी को अवरोध की आवश्यकता नहीं रह गई जिसकी सुरक्षा के लिए इसे रखा गया था और न उसके (पत्नी के) कुटुम्ब के सदस्यों को ही इसकी कोई आवश्यकता थी जो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति के हक-

1. जैकसन ब० हाबहाउस, (1817) 2 मेरीवेल 483, 16 आर० आर० 200, 203।
2. देखिए हर्ट दि ओरिजिन ऑफ रेस्ट्रेंट अपॉन एन्टीसिपेशन" 40 एल० क्यू० आर० 221।
3. कन्वेयेंसिंग ऐक्ट, 1881 की धारा 39 जो कन्वेयेंसिंग ऐक्ट, 1911 की उस धारा 7 द्वारा प्रतिस्थापित की गई, जो लॉ ऑफ प्रापर्टी, 1925 की धारा 169 द्वारा प्रतिस्थापित की गई।
4. लॉ ऑफ प्रापर्टी ऐक्ट, 1925 की धारा 169।

दार होंगे। अन्त में, मैरीड विमन्स (रेस्ट्रेण्ट्स अपान एन्टीसीपेशन) ऐक्ट, 1949 द्वारा इन सभी अवरोधों को हटा लिया गया जो कभी भी प्रत्याशा पर अधिरोपित किए गए थे[1]।

4. न्यास अधिनियम

न्यास अधिनियम में उपबन्ध।

5.13. यह तो थी इंग्लैण्ड में प्रत्याशा पर अवरोध के इतिहास और उसके विकास की बात जो सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 के परन्तुक की विषय-वस्तु के लिए सुसंगत है। प्रत्याशा पर अवरोध से सम्बन्धित उपबन्ध भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 56 और धारा 58 में भी हैं। इस रिपोर्ट में आगे हमने सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10[2] को संशोधित करने की जो सिफारिश की है उसकी दृष्टि से न्यास अधिनियम की इन दो धाराओं[3] का संशोधन करना भी आवश्यक है और हम तदनुसार सिफारिश करते हैं। ये दोनों धाराएं, जैसी वे इस समय हैं, नीचे उद्धृत की जा रही हैं।

विनिर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार।

"56. हिताधिकारी न्यासकर्ता के आशय का अपने हित के विस्तार तक विनिर्दिष्ट निष्पादन कराने का हकदार होता है ;

कब्जे के अन्तरण का अधिकार।

और जहां कि केवल एक हिताधिकारी हो और वह संविदा करने के लिए सक्षम हो, या जहां कि कई हिताधिकारी हों और वे संविदा करने के लिए सक्षम हों और सभी एक मन के हों, वहां वह या वे न्यासी से अपेक्षा कर सकेगा या कर सकेंगे कि न्यासी न्यास सम्पत्ति का अन्तरण ऐसे हिताधिकारी या हिताधिकारियों को या ऐसे व्यक्ति को, जिसे वह या वे निर्दिष्ट करे या करें, कर दे।

जब कि सम्पति का अन्तरण या वसीयत विवाहित स्त्री के फायदे के लिए ऐसे की गई है कि उसे यह शक्ति प्राप्त नहीं होगी कि वह अपने आप को अपने फायदाप्रद हित से वंचित कर ले, तब इस धारा के खण्ड में की कोई भी बात उसकी वैवाहिक स्थिति कायम रहने तक ऐसी सम्पत्ति को लागू नहीं होती।" (उदाहरण उद्धृत नहीं किए गए हैं)।

फायदाप्रद हित के अन्तरण का अधिकार।

"58. हिताधिकारी, यदि वह संविदा करने के लिए सक्षम हों, अपने हित का अन्तरण कर सकेगा, किन्तु उस तत्समय प्रवृत्त विधि के अध्यधीन ही कर सकेगा जो कि उन परिस्थितियों और उस विस्तार के बारे में हो जिनमें और जिस तक वह ऐसे हित का व्ययन कर सकता है :

परन्तु जब कि सम्पत्ति का अन्तरण या वसीयत विवाहित स्त्री के फायदे के लिए ऐसे की गई हो कि उसे यह शक्ति प्राप्त नहीं होगी कि वह अपने आपको अपने फायदाप्रद हित से वंचित कर ले, तब इस धारा में की कोई भी बात उसकी वैवाहिक स्थिति कायम रहने तक ऐसे हित का अन्तरण करने के लिए उसे प्राधिकृत नहीं करेगी।"

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इनमें यथोचित संशोधन की आवश्यकता है।

---

1. परिशिष्ट 4।
2. देखिए सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 के सम्बन्ध में चर्चा (अध्याय 15)।
3. भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 56 और 58।

अध्याय 6

1874 के अधिनियम का विस्तार और लागू होना

धारा 1 और 2— विस्तार और लागू होना।

6.1. अब हम 1874 के अधिनियम की विस्तार से चर्चा करेंगे। अधिनियम की धारा 1 और 2 अधिनियम के लागू होने और विस्तार और अन्य आरंभिक बातों के विषय में है। इनमें से केवल वह उपबन्ध जिस पर यहां विचार करने की आवश्यकता है, धारा 2 का दूसरा पैरा है जो इस प्रकार है—

> "किन्तु इसमें की कोई बात किसी ऐसी विवाहित स्त्री को लागू नहीं होगी जो अपने विवाह के समय हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिख या जैन धर्म को मानती थी या जिसका पति ऐसे विवाह के समय उन धर्मों में से किसी धर्म को मानता था।"

धारा 2 के दूसरे पैरा का संशोधन करने की सिफारिश।

6.2. हम यह बताना चाहते हैं कि यह उपबन्ध अत्यन्त व्यापक रूप में अभिव्यक्त है क्योंकि धारा 6(2) के आधार पर अधिनियम की धारा 6 अधिनियम की धारा 2 के दूसरे पैरा द्वारा अपवर्जित व्यक्तियों को उस तारीख से लागू होती है जो उस निमित्त धारा 6(2) में उल्लिखित है। यह स्थिति 1959 में धारा 6 के संशोधन के पश्चात् की स्थिति है। अतः यह वांछनीय है कि धारा 2 के दूसरे पैरा का आरम्भिक भाग इस प्रकार पुनरीक्षित किया जाए कि उसका निम्नलिखित रूप हो जाए, अर्थात् :—

> "किन्तु धारा 6 की उपधारा (2) द्वारा अन्यथा जो उपबन्ध है उसको छोड़कर इसकी कोई भी बात .... को लागू नहीं होती।"

हम सिफारिश करते हैं कि यदि वर्तमान संरचना कायम रखनी है तो दूसरे पैरा का संशोधन उक्त रूप में किया जाना चाहिए।

अन्तर्विवाह का मामला जिसमें एक पक्षकार अधिनियम द्वारा शासित है।

6.3. धारा 2 का दूसरा पैरा जिसे हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं[1], अधिनियम से ऐसे मामलों को अपवर्जित करता है जिनमें केवल एक पक्षकार अधिनियम द्वारा शासित होता है। इस प्रकार जहां पति या पत्नी में से कोई एक अपवर्जित समुदाय का है वहां यह अधिनियम लागू नहीं होगा चाहे दूसरा पक्षकार उस समुदाय का हो जिसको यह अधिनियम लागू होता है। उदाहरणार्थ, किसी हिन्दू से विवाह करने वाली ईसाई पत्नी इस पैरा के आधार पर अधिनियम के प्रवर्तन से अपवर्जित हो जाएगी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह माना जाता है कि ऐसे मामले में पति को उसकी स्वीय विधि लागू होगी और यह कि हिन्दू पति ईसाई स्त्री से विवाह करके 'कॉमन लॉ' के अधिकार नहीं प्राप्त कर लेगा।

उक्त कल्पना के आधार पर ऐसी स्थिति में 1874 के अधिनियम को इंग्लैण्ड का कॉमन लॉ लागू नहीं होता और न उसके लागू होने की आवश्यकता ही है। इसके अतिरिक्त, विशेष विवाह अधिनियम के विनिर्दिष्ट उपबन्ध[2] के आधार पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 20 लागू होगी जो यह अधिनियमित करती है कि यदि पक्षकार विशेष विवाह अधिनियम के अधीन विवाह करते हैं तो भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम लागू होगा। हम समझते हैं कि इस सम्बन्ध में स्थिति में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

धारा 2 का तीसरा पैरा।

6.4. हम देखते हैं कि धारा 2 का तीसरा पैरा राज्य सरकार को समुदाय के कुछ वर्गों को अधिनियम के उपबन्धों से भूतलक्षी और भविष्यलक्षी दोनों रूप से छूट देने की विस्तृत शक्ति देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जहां तक इन समुदायों का सम्बन्ध है, उनके अपनी विशिष्ट रूढ़ियों और आदेशों के कारण सम्पूर्ण अधिनियम को या उसके किसी भाग को उन पर लागू करना समीचीन नहीं होगा और यह भी प्रतीत होता है कि जहां पहले से छूट नहीं दी गई है, बाद में यह पाया जा सकता है कि यदि इन समुदायों के सम्बन्ध में अधिनियम का प्रवर्तन भूतलक्षी प्रभाव से उपान्तरित नहीं किया जाता तो कुछ कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। स्पष्ट है कि इन कारणों का ध्यान रखते हुए, विधानमण्डल ने वे विस्तृत शक्तियां दी हैं जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। इस सम्बन्ध में किसी संविवाद या आपत्ति के अभाव में हम इसमें कोई परिवर्तन उचित नहीं समझते।

---

1. पूर्वगामी पैरा 6.1।
2. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 21।

अध्याय 7

विवाहित स्त्रियों की मजदूरी और उनके उपार्जन

7.1. धारा 4 विवाहित स्त्री की मजदूरी और उसके उपार्जन के विषय में है और वह इस प्रकार है : धारा 4।

"4. **विवाहित स्त्रियों के उपार्जन का उनकी पृथक् सम्पत्ति होना।**—किसी विवाहित स्त्री की मजदूरी और उसके उपार्जन, जो उसके द्वारा, न कि उसके पति द्वारा, किए गए किसी नियोजन, उपजीविका या व्यापार में, इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात्, उस स्त्री द्वारा अर्जित या प्राप्त किए गए हैं,

और किसी साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक कौशल के प्रयोग द्वारा इस प्रकार अर्जित कोई धन या अन्य सम्पत्ति भी,

और ऐसी मजदूरी, ऐसे उपार्जनों और ऐसी सम्पत्ति से हुई सारी बचत और उसके विनिधान,

उसकी पृथक् सम्पत्ति समझे जाएंगे और ऐसी मजदूरी, उपार्जनों और सम्पत्ति के लिए उसकी रसीदें ही पर्याप्त उन्मोचन होंगी"।

7.2. यह उल्लेखनीय है कि धारा में "पृथक् सम्पत्ति" पद का प्रयोग किया गया है जो अब इंगलैण्ड में समाप्त कर दिया गया है[1]। इस पद का एक इतिहास है। इंगलैण्ड में 16वीं शताब्दी के अन्त में[2] यह स्थापित हो चुका था कि यदि किसी विवाहित स्त्री के **पृथक् उपयोग** के लिए सम्पत्ति न्यासियों को अंतरित की जाती थी तो उस विवाहित स्त्री को ईक्विटी में, उसको (सम्पत्ति को) धारण करने और उसका व्ययन करने का वही अधिकार प्राप्त था मानो वह **अविवाहित** स्त्री हो। इसलिए वह ऐसे किसी अन्य वयस्क हिताधिकारी की तरह जो पूर्ण हकदार हो, इसका अपने जीवनकाल में या वसीयत द्वारा व्ययन कर सकती थी और ऐसे हिताधिकारी की तरह वह न्यासियों को विधिक सम्पदा का हस्तांतरण करने को कह सकती थी केवल उस दशा में जब वह अपनी पृथक् 'सम्पत्ति' की बाबत वसीयत किए बिना मर जाती थी, उसकी साम्यापूर्ण (इक्विटेबुल) सम्पत्ति में पति को ऐसे हित प्राप्त होते थे जो उसे तब प्राप्त होते जब कि वह सम्पत्ति उसकी पत्नी के पृथक् उपयोग के लिए व्यवस्थापित न की गई होती। "पृथक् सम्पत्ति" की संकल्पना की उत्पत्ति यही है। पृथक् सम्पत्ति का इतिहास।

7.3. यह संकल्पना वर्तमान समय में अप्रचलित हो गई है और इसीलिए इंग्लैण्ड में[3] विधानमण्डल ने 1935 में वास्तविकता को स्वीकार किया और पृथक् सम्पदा की संकल्पना को समाप्त कर दिया और पत्नी को वैसे ही अधिकार और शक्तियां प्रदान की जैसी कि पूर्ण क्षमता के अन्य वयस्कों को प्राप्त थी। एक पूर्व अध्याय में हम इंग्लैण्ड के विधान के इतिहास की चर्चा कर चुके हैं[4]। 1935 का ऐक्ट।

7.4. धारा 4 में 'पृथक् सम्पत्ति' पद अब अनावश्यक है क्योंकि अब विधि की दृष्टि में कोई 'संयुक्त' सम्पत्ति नहीं है जिससे 'पृथक्' सम्पत्ति को सुभिन्न करने की आवश्यकता हो। अतएव "पृथक्" शब्द को हटा दिया जाना चाहिए और हम तदनुसार सिफारिश करते हैं। धारा 4 में से 'पृथक्' शब्द हटाकर उसका संशोधन करने की सिफारिश।

---

1. आगामी पैरा 7.3।
2. होल्ड्सवर्थ, हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लॉ, जिल्द 5, पृष्ठ 310—315।
3. लॉ रिफार्म (मैरिड विमेन एण्ड टार्ट-फीजर्स) ऐक्ट, 1935।
4. पूर्वगामी अध्याय 2।

अध्याय 8

पत्नियों और पतियों द्वारा बीमे

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना ।

8.1. इस अध्याय में हम पत्नियों और पतियों द्वारा बीमा से सम्बन्धित अधिनियम की धारा 5 और 6 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों की चर्चा करेंगे । धारा 6 का व्यावहारिक महत्व पर्याप्त है क्योंकि यह सभी समुदायों के व्यक्तियों को लागू होती है और इससे निर्वचन और लागू होने के संबंध में बहुत से प्रश्न पैदा हुए हैं ।

2. धारा 5

धारा 5 ।

8.2. धारा 5 इस प्रकार है :—

"5. कोई विवाहित स्त्री अपनी ओर से, किन्तु अपने पति से स्वतंत्र रूप से, बीमे की कोई पालिसी ले सकेगी और वह तथा उससे होने वाले सभी फायदे, **यदि पालिसी में यह प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त हो कि वह इस प्रकार होगा**, उसकी पृथक् सम्पत्ति होगी और उस पालिसी द्वारा संरक्षित संविदा उसी प्रकार विधिमान्य होगी मानो वह किसी अविवाहित स्त्री के साथ की गई हो ।"

8.3. हम इस धारा के महत्व की व्याख्या कर चुके हैं[1] और यह बता चुके हैं कि पूर्व प्रचलित नियमों को कैसे उपांतरित करती है । हमारा विचार है कि इस धारा में 'पृथक्' शब्द अनावश्यक है[2] ।

हमारा यह भी विचार है[3] कि यदि धारा को वर्तमान रूप में बनाए रखना है तो पालिसी में यह "प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त होना चाहिए कि वह इस प्रकार होगा" पद को विलुप्त कर दिया जाना चाहिए ।

हम सिफारिश करते हैं कि इस धारा का तदनुसार पुनरीक्षण किया जाए ।

3. धारा 6

साधारण

धारा 6 ।

8.4. अब हम धारा 6 पर आते हैं जो इस प्रकार है :—

"6. **पत्नी के फायदे के लिए पति द्वारा बीमा**—(1) किसी विवाहित पुरुष द्वारा ली गई अपनी जीवन बीमा पालिसी, जिसमें प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त हो कि वह उसकी पत्नी, या उसकी पत्नी और बालकों, या उनमें से किसी के फायदे के लिए है, इस प्रकार अभिव्यक्त हित के अनुसार उसकी पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी फायदे के लिए प्रवृत्त होगी और न्यास समझी जाएगी और जब तक उस न्यास का कोई उद्देश्य शेष रहता है तब तक, उस पर उसके पति या उसके लेनदारों का नियंत्रण नहीं रहेगा और वह उसकी सम्पदा का भाग होगी ;

"जब पालिसी द्वारा प्रतिभूत राशि संदेय हो जाए तब वह, जब तक कि उसे प्राप्त करने और रखने के लिए विशेष न्यासी सम्यक् रूप से नियुक्त नहीं कर दिए जाते तब तक उस राज्य के, जिसमें वह कार्यालय स्थित है जहां बीमा कराया गया था, शासकीय न्यासी को दे दी जाएगी और पालिसी में अभिव्यक्त न्यासों पर या ऐसे न्यासों पर जो तत्समय विद्यमान हों उस न्यासी द्वारा प्राप्त की और रखी जाएगी ।

"और ऐसी राशि के सम्बन्ध में उसकी सभी प्रकार से वही स्थिति होगी मानो वह 1864 के अधिनियम 1 की धारा 10 के अधीन (शासकीय न्यासी का पद गठित करने के लिए) उच्च न्यायालय द्वारा उसका सम्यक् रूप से नियुक्त न्यासी हो ।

"इसमें की कोई बात यह प्रभाव नहीं रखेगी कि वह बीमे की किसी ऐसी पालिसी से, जो लेनदारों को धोखा देने के इरादे से ली गई हो, प्राप्त आगमों में से किसी लेनदार को मिलने वाले धन को प्राप्त करने के उसके अधिकार को नष्ट करती" है—या उसमें कोई अड़चन डालती है ।

---

1. पूर्वगामी पैरा 4.2 ।
2. आगामी अध्याय 14 भी देखिए ।
3. आगामी अध्याय 14 भी देखिए ।

"(2) धारा 2 में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (1) के उपबन्ध उसमें निर्दिष्ट किसी ऐसी बीमा पालिसी को लागू होंगे, जो––

(क) किसी हिन्दू, मुस्लिम, सिख या जैन द्वारा––

(i) 1913 की दिसम्बर के इक्तीसवें दिन के पश्चात् मद्रास में, अथवा

(ii) 1923 की अप्रैल के प्रथम दिन के पश्चात्, किसी अन्य ऐसे राज्यक्षेत्र में, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार, विवाहित स्त्री सम्पत्ति (विस्तारण) अधिनियम, 1959 के प्रारम्भ से ठीक पूर्व था; अथवा

(iii) किसी ऐसे राज्यक्षेत्र में, जिस पर इस अधिनियम का विस्तार, विवाहित स्त्री सम्पत्ति (विस्तारण) अधिनियम, 1959 के प्रारम्भ को ओर से, होता है

ऐसे प्रारम्भ को या उसके पश्चात् ली जाती है :––

परन्तु इसमें की कोई बात ऐसे किसी अधिकार या दायित्व को प्रभावित नहीं करेगी, जो–

(i) ऐसे किसी मामले में, जिसको खण्ड (क) का उपखण्ड (i) या उपखण्ड (ii) लागू होता है, 1923 की अप्रैल के प्रथम दिन से पूर्व, अथवा

(ii) ऐसे किसी मामले में, जिसको खण्ड (क) का उपखण्ड (iii) या खण्ड (ख) लागू होता है, विवाहित स्त्री सम्पत्ति (विस्तारण) अधिनियम, 1959 के प्रारम्भ के पूर्व, किसी सक्षम न्यायालय द्वारा पारित किसी डिक्री के अधीन प्रोद्भूत या उपगत हुआ है।

8.5. यह धारा इस अधिनियम की सबसे अधिक महत्वपूर्ण धारा है और पति द्वारा पत्नी और बच्चों के फायदे के लिए धारा 6—आरंभ। बीमा की पालिसी के कुछ महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। यह उपबन्ध आवश्यक समझा गया था क्योंकि यह सोचा गया था कि किसी ऐसे उपबंध के अभाव में यह संव्यवहार कानून द्वारा अनुपान्तरित इंग्लैण्ड विधि में स्थिति के अनुरूप स्वेच्छया व्यवस्थापन समझा जाएगा[1]।

इंग्लैण्ड के न्यायालयों की पुराने सिद्धान्त के अनुसार पति द्वारा पत्नी के फायदे के लिए ऐसी पालिसी स्वेच्छया व्यवस्थापन के रूप में ही होगी[2] और इसलिए उसमें वे खतरे हो सकते हैं जो इस प्रकार के व्यवस्थापन में होते हैं। यह सर्वविदित है कि विधानमंडल उन जीवन बीमा पालिसियों को प्रोत्साहन देना चाहता था जिनमें पतियों और बच्चों के लिए उपबंध थे और ऐसी पालिसियों को उन खतरों के अधीन नहीं रखना चाहता था जिनके अधीन वे इंग्लैण्ड के निर्णयों के कारण इसलिए थीं––इंग्लैण्ड के न्यायालयों के न्यायाधीश तकनीकी बारीकियों और पूर्व निर्णयों (दृष्टान्तों) द्वारा बाध्य होते हैं। विधेयक पुरःस्थापित करते समय श्री हाबहाउस ने कहा था[3] "इस देश के बीमा कार्यालयों से सम्बद्ध कुछ महानुभावों ने कुछ समय पूर्व सरकार से यह कहते हुए अपील की थी कि वे उपबंध (अर्थात् इंग्लैण्ड के कानून के वे उपबंध जिन्होंने इंग्लैण्ड में किए गए निर्णयों को उलट दिया है) अत्यन्त फायदाप्रद पाए गए हैं और उनके विचार से इन उपबन्धों को भारत में भी लागू न करने का कोई कारण नहीं था। इसलिए हम एक अधिनियम पुरःस्थापित करने का प्रस्ताव करते हैं जिसमें भारत के लिए वैसे ही उपबन्ध होंगे जैसे कि इंग्लैण्ड की प्रजा के लिए उचित समझे गए थे।"

8.6. जहां तक स्वेच्छया व्यवस्थापनों का––अर्थात् प्रतिफल के बिना व्यवस्थापन का संबंध है, उनके लिए ईक्विटी (साम्या) में कुछ विशेष नियम हैं। प्रथम तो जहां न्यास, उसके सृजन के अप्रभावी तरीके के कारण न्यास पूर्णतया गठित नहीं किया गया है, वहां यह सूत्र लागू होगा कि ईक्विटी (साम्या) किसी स्वयंसेवक की सहायता नहीं करेगी। इस तथ्य के अलावा कि स्वयंसेवकों के पक्ष में विनिर्दिष्ट पालन की अनुज्ञा नहीं दी जाएगी, एक अन्य पहलू भी था, अर्थात् 1571 के एक कानून[4] के अधीन स्वेच्छया व्यवस्थापन को उस दशा में भी रद्द किया जा सकता था जिसमें हिताधिकारियों को

1. कानूनी उपबन्ध के लिए आगामी पैरा 8.7 देखिए।
2. आगामी पैरा 8.6।
3. भारत के राजपत्र, ता० 2 अगस्त, 1873, का अतिरिक्त अनुपूरक देखिए।
4. 15 एलिज 1 चां० 5 (1571)।

व्यवस्थापन करने वाले की लेनदारों को धोखा देने की इच्छा का कोई ज्ञान न रहा हो[1]। बाद में 1571 के ऐक्ट को लॉ आफ प्रापर्टी ऐक्ट, 1925 की धारा 122 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त पश्चात्वर्ती क्रेता को धोखा देने के आशय से किया गया भूमि का स्वेच्छया व्ययन क्रेता की प्रेरणा पर शून्यकरणीय होगा। इंग्लैण्ड में 1585[2] के एक ऐक्ट द्वारा इसका उपबंध किया गया।

मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट की धारा 11 (i)

बैंकरप्सी लॉ मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट की धारा 11 (i) के अधीन कुछ मामलों में स्वेच्छया व्यवस्थापन व्यवस्थापन करने वाले व्यक्ति के तत्पश्चात् दिवालिया होने पर, शून्य किया जा सकता है चाहे वह कपटपूर्ण न भी हो[4]।

धारा 6 का आशय इन सब जटिलताओं से बचना था। इस पर विस्तार से चर्चा करने से पूर्व इस विषय पर इंग्लैण्ड के कानूनी उपबन्धों पर दृष्टि डालना सुविधापूर्ण होगा।

4. इंग्लैंड की विधि

8.7. इंग्लैण्ड मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंगलैण्ड)[5] की धारा 11 के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा अपने लिए ली गई कोई जीवन पालिसी जो उसकी पत्नी और बच्चों या उनमें से किसी एक के फायदे के लिए (इसी प्रकार किसी स्त्री द्वारा अपने पति और बच्चों के लिए) अभिव्यक्त हो, पत्नी और बच्चों के पक्ष में न्यास सृजित करती है। इस धारा से संबंधित निर्णयज विधि से कुछ प्रतिपादनाएं उत्पन्न होती हैं :—

(क) जब तक 'न्यास का कोई उद्देश्य' अपालित रहता है, पालिसी का धन बीमाकृत व्यक्ति की सम्पदा का भाग नहीं होता[6]। वे उस दशा को छोड़कर जहां लेनदारों को धोखा देने के आशय से पालिसी ली गई हो और प्रीमियम संदत्त किया गया हो उसके ऋण के अधीन नहीं होते हैं। उक्त दशा में लेनदार पालिसी धन में से इस प्रकार संदाय किए गए प्रीमियम की रकम के बराबर रकम पाने के हकदार होंगे।

(ख) इस धारा का उदार निर्वचन किया गया है और उसमें (1) विन्यास[7] पालिसियां और (ii) दुर्घटना बीमा पालिसियां[8] भी सम्मिलित की गई हैं।

1882 के इंग्लैण्ड के अधिनियम की धारा 11 में "के फायदे के लिए" वाक्यांश की अस्पष्टता से कुछ प्रश्न उत्पन्न हो गए हैं जिनका कालक्रम में न्यायिक अर्थान्वयन हुआ है।

(i) इस प्रकार इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी पत्नी (जिसका नाम न दिया गया हो)[9] और बच्चों के फायदे के लिए ली गई पालिसी दूसरी पत्नी और किसी दूसरे विवाह के बच्चों के फायदे के लिए होगी[10] और जब तक पालिसी में अन्यथा उपबंध न किया गया हो, हिताधिकारी इसे संयुक्त रूप से लेंगे[11]।

(ii) किन्तु किसी प्रतिकूल आशा के अधीन रहते हुए, वह पत्नी जिसका नाम दिया गया है, पालिसी में आत्यंतिक (पूर्ण) निहित हित तत्काल पाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि यदि, वह पति से पहले मर जाती है तो वह उसकी सम्पदा का भाग रूप हो जाता है[12]। उसके पति को उन प्रीमियमों के लिए धारणाधिकार प्राप्त होता है जो उसने उसकी (पत्नी की) मृत्यु के बाद, न्यास सम्पत्ति के परिरक्षण के लिए न्यासी द्वारा किए गए संदायों के रूप में दिए गए हैं[13]।

---

1. स्नेल, इक्विटी (1966) पृष्ठ 141।
2. 27 एलिज 1, अध्याय 4, जिसे बाद में लॉ ऑफ प्रापर्टी ऐक्ट, 1925 की धारा 173(1) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था।
3. अब बैंकरप्सी ऐक्ट, 1914 (इंग्लैण्ड) की धारा 42।
4. री मेकाडम (1950) 1 आल इंग्लैण्ड रिपोर्ट्स 303।
5. इस ऐक्ट के पाठ के लिए उपबन्ध 3 देखिए।
6. री क्लेज पालिसी ऑफ एश्योरेंस, (1937) 2 आल० ई० आर० 548।
7. (क) री लोकिमिडिस्स पालिसी ट्रस्ट्स (1925) चां० 403।
   (ख) री फ्लीटवुड्स पालिसी (1926) चां० 48।
8. री ग्लैडिज (1937) चां० 586।
9. सामान्यतया देखिए (1925) 96 एस० जे० 720।
10. री ब्राउन्स पालिसी (1903) 1 चां० 188।
    री पार्कर (1906) 1 चां० 526 भी देखिए और री ग्रिफिथ पालिसी (1903) 1 चां० 739 से तुलना कीजिए।
11. री डेव्यूज पालिसी (1892) चां० 90।
12. गौसिंग बनाम सन लाइफ एश्योरेंस सोसायटी (1938) चां0 126; और देखिए री विल्पैटिक्स पालिसीज ट्रस्ट्स (1966) डब्ल्यू० एल० आर० 1346।
13. री स्मिथ्स एस्टेट (1937) चां० 636।

(ग) चाहे वह व्यक्ति जिसके एकमात्र फायदे के लिए बीमा कराया गया है, बीमाकृत व्यक्ति की हत्या या नरहत्या का दोषी हो, फिर भी पालिसी का धन बीमा कम्पनी द्वारा संदेय होगा। किन्तु हिताधिकारी को धन लेने की स्वीकृति देना लोक नीति के विरुद्ध होगा इसलिए वह (धन) बीमाकृत की सम्पदा का भाग रूप होगा[1]।

विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 5 और मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंग्लैण्ड का ऐक्ट) की धारा 11।

8.8. इंग्लैण्ड के ऐक्ट[2] और भारतीय अधिनियम में जो महत्वपूर्ण अन्तर है वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(1) भारतीय अधिनियम पति द्वारा ली गई पालिसी तक सीमित है। इंग्लैण्ड के ऐक्ट के अन्तर्गत पति या पत्नी, किसी के द्वारा ली गई पालिसियां आती हैं।

(2) भारतीय अधिनियम में यह उपबन्ध है कि पालिसी में पत्नी और बच्चों के लिए फायदा "प्रत्यक्षतः" अभिव्यक्त किया जाना चाहिए। "(आन द फेस आफ इट" शब्द (इंग्लैण्ड) मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1870 की धारा 10 में मौजूद थे किन्तु 1882 के इंगलैण्ड के ऐक्ट की धारा 11 में इन शब्दों को हटा दिया गया।

(3) शब्द "प्रवृत्त होगी और न्यास समझी जाएगी" भारतीय अधिनियम की धारा 6 में आए हैं[3] (यही शब्द 1870 के इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 10 में थे)। इंग्लैण्ड के 1882 के ऐक्ट की धारा 11 में भिन्न शब्द हैं। इंग्लैण्ड के ऐक्ट के अब "शैल क्रिएट ए ट्रस्ट्स इन फेवर आफ द आब्जेक्ट्स देयर इन नेम्ड।" (उसमें नामित प्रयोजन के पक्ष में न्यास सृजित करेगा) शब्द का प्रयोग है। इसलिए इंग्लैण्ड का 1882 का ऐक्ट भारतीय अधिनियम की धारा 6 की अपेक्षा जिसमें न्यास समझे जाने का उपबंध है, न्यास को अधिक निश्चित बनाएगा।

(4) भारतीय अधिनियम की धारा 6 रकम को विशेष न्यासियों या (उन मामलों में जिनमें विशेष न्यासी न हो) शासकीय न्यासियों को संदेय बताती है जो उस रकम को पालिसी में अभिव्यक्त न्यासों के रूप में धारण करेंगे। इंग्लैण्ड के 1882 के ऐक्ट की धारा 11 में इन प्रयोजनों के लिए इस प्रकार के कोई विशेष न्यासी या शासकीय न्यासी नहीं हैं[4]। इंग्लैण्ड में, न्यासियों की नियुक्ति के अभाव में पति रकम न्यासतः धारण करता है।

(5) भारत में कपट के मामले में, लेनदारों को ऐसी किसी पालिसी के (सम्पूर्ण) आगम के विरुद्ध अधिकार है—यद्यपि "सम्पूर्ण" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इंग्लैंड के ऐक्ट के अधीन लेनदार पालिसी के अधीन संदेय रकम में से इस प्रकार संदाय किये गये प्रीमियम की रकम के बराबर रकम प्राप्त करने के हकदार होते हैं। इसलिये इंग्लैंड के ऐक्ट के अधीन लेनदार उस रकम की अपेक्षा कम रकम प्राप्त करने के हकदार होंगे जो वे भारत में पाएंगे।

(6) भारतीय अधिनियम के अधीन, न्यास के हिताधिकारी, पत्नी या पत्नी और बच्चे या उनमें से कोई होना चाहिये। इंगलैंड के ऐक्ट में "अपनी पत्नी के या अपने बच्चों के या अपनी पत्नी और बच्चों या उनमें से किसी के फायदे" शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसलिये इंग्लैंड के ऐक्ट के अधीन, न्यास माता को सम्मिलित किये बिना केवल बच्चों के फायदे के लिये बनाया जा सकता है।

(7) भारतीय अधिनियम में यह विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित है कि जब तक न्यास बना रहेगा, उस पर पति का नियंत्रण नहीं रहेगा। इंग्लैंड के 1882 के ऐक्ट में ये शब्द नहीं हैं।

5. अनुयोज्य दावे

धारा 6 और अनुयोज्य दावे।

8.9. हमें धारा 6 के संदर्भ में अनेक बातों पर[5] विस्तारपूर्वक विचार करना होगा। किन्तु आरम्भ में कुछ मूलभूत बातों पर चर्चा की जाए क्योंकि इस धारा में अनुयोज्य दावे के अन्तरण की चर्चा है जो मोटे तौर पर इंगलड के ऐक्ट "चोज इन ऐक्शन" के समान है।

समनुदेशन के ढंग।

8.10. चार कारणों से "चोज इन ऐक्शन" का समनुदेशन समनुदेशक पर आबद्धकर हो सकता है; (क) वह समनुदेशिती को उसका सम्पूर्ण हित अन्तरित करता है; (ख) वह समनुदेशिती को उसका साम्यागत हित अन्तरित करता है

---

1. क्लीवर बनाम म्युचुअल रिजर्व फण्ड लाइफ एसोसिएशन (1892) 1 क्यू० बी० 147। देखिए आगामी पैरा 8.19।
2. धारा 11 मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंग०) उपबंध 3।
3. धारा 6 (पूर्वगामी पैरा 8.4)।
4. ललिथाबिल बनाम गार्जियन आफ इंडियन इन्श्योरेंस कं०, ए० आई० आर० 1937 मद्रास 645,
5. आगामी पैरा 8.20 देखिए।

और उसके द्वारा समनुदेशक को न्यासी के रूप में बदल देता है; (ग) वह कारगर रूप से अन्य व्यक्तियों को "चोज इन ऐक्शन" का न्यासी बनाता है ; या (घ) समनुदेशक संविदा द्वारा समनुदेशिती को उसे "चोज"[1] वसूल करने में उसे सहायता करने को आबद्ध होता है। मोटेतौर पर इंग्लैंड में जिसे 'चोज इन एक्शन' कहा जाता है उसी को भारतीय वकील अनुयोज्य दावे कहते हैं। शब्दावली के इस अन्तर से विधिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता । इसलिये किसी अनुयोज्य दावे के समनुदेशन को प्रभावी बनाने के लिये अपनाई गई युक्ति का प्रवर्तन इस बात पर निर्भर होता है कि अपनाई गई युक्ति को उक्त कारणों में से कौनसा कारण लागू होता है।

अनुयोज्य दावों का अन्तरण।

8.11. भारत में, अनुयोग्य दावे के अन्तरण का सामान्य विषय सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 130 द्वारा शासित[2] होता है। किन्तु उस धारा के अपवाद में अन्य बातों के साथ यह उपबंध है कि इस धारा की कोई भी बात किसी.....बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38 के उपबन्धों पर प्रभाव नहीं डालती है।" अतः बीमा पालिसी के फायदे को समनुदेशन अब बीमा अधिनियम द्वारा शासित होता है[3]। सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 30 का दूसरा उदाहरण दर्शित करता है कि यदि बीमा अधिनियम का उपबन्ध न होता तो सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 जीवन पालिसियों के समनुदेशन को भी लागू होती।

कामन लॉ में 'चोज इन ऐक्शन' समनुदेशित नहीं किया जा सकता था। किन्तु ईक्विटी में, सूचना संबंधी कुछ अपेक्षाओं के अधीन रहते हुए इसका समनुदेशन हो सकता था। जैसा कि न्यायाधीश रैनकिन ने कहा है[4] विधानमंडल ने सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 में एक नई स्कीम गढ़ी है जिसमें दोनों प्रणालियों की कुछ विशिष्टियां हैं।

6. धारा 6 का महत्व

पालिसी का समनुदेशन, संविदा का समनुदेशन होने के कारण अनुयोज्य दावे का समनुदेशन है।

8.12. 1874 के अधिनियम की धारा 6 का महत्व समझने के लिये यह वांछनीय है कि उस विधि पर विचार किया जाए जो अन्यथा लागू होगी। विशेष स्वरूप के कानूनी उपबन्धों के अलावा जीवन बीमा पालिसी के अधीन धनराशियों का दावा करने के अधिकार का समनुदेशन वर्ष 1938 के पूर्व, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 130[5] द्वारा अपेक्षित औपचारिकताओं[6] का अनुपालन करके ही किया जा सकता था। समनुदेशन सीधे या न्यास के रूप में हो सकता है किन्तु किसी भी दशा में, जहां तक औपचारिकताओं का संबंध है, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 के अनुपालन की अपेक्षा की गई थी। यह इसलिये है कि वास्तव में ऐसा समनुदेशन उस संविदा के फायदे का समनुदेशन है जो कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के अर्थ में "अनुयोज्य दावे" की एक किस्म है। अतः यह सुस्थापित हो चुका था कि बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38 के अधिनियमन के पूर्व जीवन बीमा पालिसी का समनुदेशन सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 के अन्तर्गत आता था[7], जो अनुयोज्य दावों के समनुदेशन के संबंध में है। ऐसे समनुदेशन से समनुदेशिती में सीधे निहित हित का सृजन हो जाता था। यह प्रतिसंहरणीय नहीं था और यह समनुदेशक[8] को इसके अधीन सभी अधिकारों[9—10—11] से पूर्णतः निर्निहित करने के लिये प्रवर्तित होता था।

समनुदेशन सशर्त या अशर्त हो सकता है। कठिनाई मुस्लिम पालिसी धारकों के संबंध में ही महसूस की गई थी, क्योंकि मुस्लिम विधि के नियमों के अधीन उस दशा को छोड़कर जिसमें पत्नी को पालिसी का समनुदेशन मेहर के रूप में किया गया हो, दावे से संबद्ध शर्तें, साधारणतया शून्य होती थीं। दान विधिमान्य होता था किन्तु शर्त शून्य होती थी[12]।

---

1. देखिए (1932) 43 एल० क्यू० आर० 550.
2. धारा 130 के लिए आगामी पैरा 8.13 देखिए।
3.-4. सूडासूक बनाम होरे मिलर, ए० आई० आर० 1923 कलकत्ता 719, 722 (न्या० रैनकिन).
5. आगामी पैरा 8.13।
6. पूर्वगामी पैरा 8.9 और 8.11।
7. (क) मूल राज बनाम विश्वनाथ, (1913) आई० एल० आर० 37, मुम्बई 198; 24 एम० एल० जे० 60 (पी० सी०) ; (ख) बालाम्बा बनाम कृष्ण अय्यर, आई० एल० आर० 37, मद्रास 483; ए० आई० आर० 1914, मद्रास 595 एफ० बी०।
8. वनर बनाम प्रैसटन (1881) 18 चां० डिवी० 1।
9. मूल राज बनाम विश्वनाथ (1913) आई० एल० आर० 37 मुम्बई 198 ; 24 मद्रास लॉ० 60 (पी० सी०)।
10. लक्ष्मी कुट्टी बनाम विष्णु नम्बिसैन, ए० आई० आर० 1939 मद्रास 411।
11. बाई लक्ष्मी बनाम जसवन्त लाल, ए० आई० आर० 1947, मुम्बई, 359।
12. देखिए—(क) शामदास बनाम सावित्री बाई, ए० आई० आर० 1937 सिन्ध 181 ; (ख) सादिक अली बनाम जाहीदा बेगम, ए० आई० आर० 1939 इला० 744।

8.13. सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 इस प्रकार है :—

सम्पत्ति अन्तरण अधि-नियम की धारा 130।

"130. (1) अनुयोज्य दावे का अन्तरण (चाहे वह प्रतिफल सहित या रहित हो) ऐसी लिखत के निष्पादन द्वारा ही किया जाएगा जो अन्तरक या उसके सम्यक् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित है, वह ऐसी लिखत के निष्पादन पर पूरा और प्रभावी हो जाएगा और तदुपरि अन्तरक के सब अधिकार और उपचार, चाहे वे नुकसानी के तौर पर हों या अन्यथा हों, अन्तरिती में निहित हो जाएंगे, चाहे अन्तरण की ऐसी सूचना, जैसी एतस्मिनपश्चात् उपबन्धित है, दी गई हो या न दी गई हो;

परन्तु ऋण या अन्य अनुयोज्य दावे के बारे में हर व्यवहार, जो ऋणी द्वारा या अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है जिससे या जिसके विरुद्ध अन्तरक यथापूर्वोक्त अन्तरण की लिखत के अभाव में ऐसा ऋण या अन्य अनुयोज्य दावा वसूल करने या प्रवर्तित कराने का हकदार होता, ऐसे अन्तरण के मुकाबले में विधिमान्य होगा (सिवाय वहां के जहां कि ऋणी या अन्य व्यक्ति उस अन्तरण का पक्षकार है या उसकी ऐसी अभिव्यक्त सूचना पा चुका है जैसी एतस्मिनपश्चात् उपबन्धित है)।

(2) अनुयोज्य दावे का अन्तरिती अन्तरण की यथापूर्वोक्त लिखत के निष्पादन पर उसके लिये वाद या कार्यवाहियां करने के लिये अन्तरक की सम्पत्ति अभिप्राप्त किये बिना और उसे उनमें का पक्षकार बनाए बिना स्वयं अपने नाम से ऐसा वाद ला सकेगा या ऐसी कार्यवाहियां संस्थित कर सकेगा।

अपवाद—इस धारा की कोई भी बात किसी समुद्री बीमा या अग्नि बीमा पालिसी के अन्तरण को लागू नहीं है और न बीमा अधिनियम, 1938 (1938 का 4) की धारा 38 के उपबन्धों पर प्रभाव डालती है।

दृष्टांत

(i) ख का क देनदार है। ख वह ऋण ग को अन्तरित कर देता है। तब क से ऋण के चुकाने के लिये ख तकाजा करता है। अन्तरण की क को धारा 131 में यथा विहित सूचना नहीं मिली है और वह ख को संदाय कर देता है। यह संदाय विधिमान्य है और ग उस ऋण के लिये क पर वाद नहीं ला सकता।

(ii) क एक बीमा कम्पनी से अपने जीवन के लिये पालिसी लेता है और उस पालिसी को वर्तमान या भावी ऋण का संदाय प्रतिभूत करने के लिये किसी बैंक को समनुदिष्ट करता है। यदि क की मृत्यु हो जाती है, तो बैंक धारा 130 की उपधारा (1) के परन्तुक और धारा 132 के उपबन्धों के अध्यधीन क के निष्पादक की सहमति के बिना पालिसी की रकम पाने और उसके आधार पर वाद लाने का हकदार है।"

बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38 का प्रभाव।

8.14. बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38 का, जिसके प्रति धारा 130 के अपवाद[1] में निर्देश किया गया है, प्रभाव उस विधि का संशोधन करना था जो सभी समुदायों के व्यक्तियों के लिये जीवन बीमा पालिसियों के समनुदेशन से संबंधित है[2]। उस धारा के अधिनियमन के पश्चात् जीवन बीमा पालिसियों का समनुदेशन, जहां तक औपचारिकताओं का संबंध है, सम्पति अन्तरण अधिनियम की धारा 130 की बजाय उस धारा द्वारा शासित होता है। इन औपचारिकताओं के, ब्यौरों से हमारा मुख्य रूप से संबंध नहीं है।

न्यास के प्रश्न पर विचार।

8.15. यदि समनुदेशन न्यास के रूप में है तो भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 5 और धारा 6 का भी अनुपालन करना आवश्यक होगा। इन उपबन्धों द्वारा अपेक्षित औपचारिकताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

न्यास के सृजन के प्रश्न पर कुछ विचार विमर्श करना आवश्यक है। साररूप में बीमा पालिसी संविदा के फायदे का प्रतिनिधित्व करती है[3]। अतः संविदा के फायदे के संबंध में न्यास का निश्चित रूप से सृजन किया जा सकता है। इस बारे में स्थिति संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है :—

सर्वप्रथम यह देखना उपयोगी होगा कि पत्नी द्वारा किये गए इस दावे में कि पति उसका न्यासी है, कौन सा सिद्धान्त जुड़ा हुआ है और इस सिद्धान्त को सर जाज जेसल, एम० आर० ने **रिचर्ड्स बनाम डेलब्रिज**[4] में निम्न-लिखित रूप में भली प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

"सिद्धान्त बहुत साधारण है। कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का अन्तरण, मूल्यवान प्रतिफल के बिना, दो में से एक प्रकार से कर सकता है, अर्थात् वह या तो ऐसे कार्य करे जो विधि में सम्पत्ति के हस्तान्तरण

1. पूर्वगामी पैरा 8.13।
2. बीमा अधिनियम की धारा 38 के लिए पूर्वगामी पैरा 5.5 देखिए।
3. पूर्वगामी पैरा 8.12 देखिए।
4. **रिचर्ड्स बनाम डेलब्रिज**, एल० आर० 18 इक्वि 11।

या समनुदेशन की कोटि में आते हैं और इस प्रकार वह अपने आपको विधिक स्वामित्व से पूर्णतः निर्निहित कर ले और ऐसी दशा में वह व्यक्ति जो ऐसे कार्यों द्वारा सम्पत्ति अर्जित करता है, उस सम्पत्ति को, यथा-स्थिति, फायदा पाने के लिये या न्यासतः लेता है, अथवा सम्पत्ति का वैध स्वामी न्यास की विधिमान्य घोषणा की कोटि में आने वाले मान्यताप्राप्त ढंगों में से किसी एक या अन्य द्वारा अपने आप को न्यासी नियत कर सकता है और विधिक हक के वस्तुतः अन्तरण के बिना सम्पत्ति के विषय में ऐसा संव्यवहार कर सकता है जिससे कि वह उसके फायदाप्रद स्वामित्व से अपने आपको निर्निहित कर ले और यह घोषणा करे कि उस समय से वह उस सम्पत्ति को अन्य व्यक्ति के लिये न्यासतः धारित करेगा। यह सही है कि उसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह "मैं स्वयं को न्यासी घोषित करता हूं" शब्दों का प्रयोग करे किन्तु उसे कुछ ऐसी बात करनी होगी जो उसके समतुल्य हो और उसे ऐसे शब्दों का प्रयोग करना होगा जिनका अर्थ वही निकले क्योंकि न्यायालय किसी व्यक्ति के आशय को क्रियान्वित करने के लिये चाहे कितना ही उत्सुक हो वह शब्दों का उनके उचित अर्थ के अनुसार ही अर्थान्वियन कर सकता है, उससे भिन्न नहीं।"

स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—

(क) संविदा के फायदे के लिये हकदार व्यक्ति पर व्यक्तियों[1] के लिये उस फायदे के न्यास का सृजन कर सकता है। वह इस न्यास का सृजन या तो स्वयं को उसका न्यासी घोषित कर के कर सकता है या उनके लिए न्यासियों को उसका समनुदेशन करके कर सकता है।

(ख) इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति आरम्भ में ही किसी पर व्यक्ति के लिये न्यासी के रूप में संविदा कर सकता है जिससे कि साम्या में वह पर व्यक्ति संविदा के फायदे के लिये आरम्भ से ही हकदार हो जाता है।

यदि संविदा को अधिमान नहीं दिया जाता है तो न्यासी पर-व्यक्ति के फायदे के लिये उसे प्रवर्तित करने के लिए अपने नाम[2] से कार्यवाहियां कर सकता है और यदि न्यासी करने से इन्कार करता है तो पर-व्यक्ति न्यासी के साथ प्रतिवादी के रूप में मिल कर वाद ला सकता है[3]।

न्यास के अस्तित्व को समाप्त करने में कठिनाईयां।

8.16. किन्तु इन मामलों में मुख्य कठिनाई उस कसौटी को खोजने में है जिससे न्यायालय यह विनिश्चय करने के लिये लागू करेंगे कि पक्षकार का आशय न्यासी के रूप में संविदा करने का था या नहीं। स्पष्ट है कि यह जानने के लिये संविदा का जिनमें वह की गई थी, अर्थ लगाना होगा और यह मालूम करना होगा कि किन विशेष परिस्थितियों में वह की गई थी। यह उन मामलों के, जिनमें न्यायालय ने न्यास नहीं पाया था,[4] मुकाबले में उन मामलों से जाहिर हो जाएगा जिनमें न्यायालय ने न्यास पाया था[5]।

न्यायालय आसानी से इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है कि पक्षकार का आशय अपने आप को न्यासी गठित करना है।

धारा 6—कानूनी न्यास का महत्व।

8.17. यह स्पष्ट है कि धारा 6 ऐसा न्यास जिसे सुविधा के लिये "कानूनी न्यास" कहा जाता है, अस्तित्व में लाकर इन कठिनाइयों को कुछ हद तक दूर करती है। धारा 6 का महत्व इस बात में है कि इससे :—

(i) समनुदेशन के लिये, बीमा अधिनियम की धारा 38[6] द्वारा, या

(ii) न्यास के सृजन के लिये, भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 द्वारा[7]

अपेक्षित औपचारिकताओं का अनुपालन अनावश्यक हो जाता है।

---

1. कार्बिन "कान्ट्रैक्ट्स फार दि बैनिफिट आफ थर्ड पर्सन्स", (1930) 46 एल० क्यु० आर० 12 और जे० जी० स्टार्क, (1948) 21 आस्ट्रेलियन ला जे० 382, 422, 455; 22 आस्ट्रे० ला जे० 67; तथा सेमुअल विलिस्टन 'कान्ट्रेक्ट्स फार दि बैनिफिट आदि' (1901) 15 हार्व० ला० रि० 767।
2. (क) **ग्रिगैरी और पार्कर बनाम बिलियम्स**, (1817) 3 मेर० 582;
   (ख) **लायडस बनाम हार्पर** (1880) 16 चा० डि० 290;
   (ग) **लेस अफरेचर्स रीयनिस सोसाइटी एनोनिमे बनाम लीपोल्ड वाल्फोर्ड (लन्दन) लिमि०।** (1919) ए० सी० 801।
3. (क) **बान्देपिडो बनाम प्रैफर्डएक्सिडेन्ट इन्सोरेंस कारपोरेशन आफ न्यूयार्क** (1933) ए० सी० 70, 79;
   (ख) **हार्मर बनाम आर्मस्ट्रांग** (1934) अध्याय 65।
4. (क) **रि० वेब** (1941) अध्याय 225;
   (ख) **रि० फार्स्टर पालिसी** (1968) 1 डब्ल्यू एल० आर० 222।
5. **रि० फास्टर** (सं० 1) 1938 3 आॅल इं० रि० 357; **ग्रीन बनाम रस्सल**, (1959) 2 क्यू० बी० 226; **रि० कुक्स एस्टे०** (1965) अध्याय 902; और **बैस्विक बनाम बैस्विमक** 1966 3 आल० इं० आर०।
6. पूर्वगामी पैरा 8.14 देखिए।
7. पूर्वगामी पैरा 8.15 देखिए।

धारा 6 के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि वह समनुदेशन के अधिक सरल ढंग का उपबन्ध करती है।

8.18. बीमा अधिनियम की धारा 38 के अधीन पालिसी के समनुदेशन के लिये अपेक्षित विभिन्न औपचारिकताओं से छूट देते हुए धारा 6 में समनुदेशन के सरल समझे जाने वाले ढंग का उपबन्ध करती है। "समनुदेशन" उतना विस्तृत और अभिव्यक्त नहीं होना चाहिये जितना कि बीमा अधिनियम के अधीन है। धारा का मर्म (पत्नी या बालकों) "के फायदे के लिये अभिव्यक्त" शब्दों में निहित है। यदि पत्नी या बालकों को फायदा पहुंचाने का आशय दृश्यमान है तो वह फायदा पालिसी में आशय की अभिव्यक्ति के आधार पर ही, अन्य औपचारिकताओं की आवश्यकता के बिना सुनिश्चित हो जाता है। यह धारा इसी सिद्धान्त और उद्देश्य से शासित होती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये यह धारा एक तंत्र की व्यवस्था करती है जिसके अधीन या तो पति द्वारा इस संबंध में नियुक्त न्यासी या ऐसी नियुक्ति न किये जाने पर, शासकीय न्यासी बीमा कम्पनी से पालिसी पर रकम प्राप्त करेगा। किसी औपचारिक न्यास की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, यह धारा भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 5 और धारा 6 के अनुपालन से छूट देती है।

इस प्रकार यह धारा न केवल बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38 के उन उपबन्धों पर अध्यारोही है जो जीवन पालिसियों के समनुदेशन से संबंधित हैं बल्कि यह भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के उपबन्धों को, उन पालिसियों को, जिनको धारा लागू होती है, लागू होने के संबंध में उपांतरित भी करती है। इस धारा के आधार पर वह न्यास अस्तित्व में आता है जिसे सुविधा के लिये "कानूनी न्यास" कहा जाता है जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं[2]।

कानूनी उपबन्ध के बिना, पालिसी में निबन्धन का प्रभाव।

8.19. विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम में उस निमित अन्तर्विष्ट किन्हीं उपबन्धों के अभाव में पालिसी में ही अन्तर्विष्ट यह निबन्धन कि रकम बीमाकृत व्यक्ति की पत्नी को उस दशा में संदेय होगी जिसमें वह पति की उत्तरजीवी होती है, बीमाकृत व्यक्ति की सम्पदा के निष्पादकों और प्रशासकों तथा पत्नी के बीच निष्प्रभाव होता है। इस प्रश्न पर एशर, एम० आर० ने **क्लीवर बनाम म्यूचुअल रिजर्व फण्ड लाइफ एसोसिएशन**' में इन शब्दों में चर्चा की गई है, अर्थात्—

"कानून के अलावा रकम पत्नी को संदेय बनाने का क्या प्रभाव होगा ? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि निष्पादकों, और प्रतिवादियों के बीच इसका कोई प्रभाव नहीं होगा। वह (पत्नी) संविदा की पक्षकार नहीं है और मैं समझता हूं कि प्रतिवादियों को उस धन पर, जिसका संदाय करने के लिये वे आबद्ध हैं, दृष्टि रखने और इस बात पर विचार करने का कि निष्पादक उसका उपयोग कैसे कर सकते हैं, कोई अधिकार नहीं हो सकता है। मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि कानून के अलावा, ऐसी पालिसी पत्नी के पक्ष में किसी न्यास का सृजन करेगी। जेम्स मेब्रिक किसी भी समय इस बारे में परिवर्तन कर सकता था कि रकम किस को मिलेगी और वह उसके संबंध में विल कर सकता था या अधिनियमिति के अनुसार संव्यवहार कर सकता था। यदि उसने ऐसा किया होता तो प्रतिवादी हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। मैं सोचता हूं कि कानून के अलावा, किसी भी हित का पत्नी को केवल इस कारण से ही संक्रामण नहीं हो जाता कि उसका नाम पालिसी में दिया गया है और यदि पति चाहता है कि ऐसे कोई हित उसको (पत्नी को) संक्रांत हो तो उसने उसके लिये रकम या तो विल द्वारा छोड़ी होती या अपने जीवन काल में ही उसके लिये रकम व्यवस्थापित कर दी होती अन्यथा यह रकम उसके निष्पादकों या प्रशासकों को संक्रांत हो गई होती।"

मद्रास के एक मामले[3] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां बीमाकृत व्यक्ति, अपने जीवन काल में किसी व्यक्ति के फायदे के लिये किसी न्यास का सृजन नहीं करता है वहां ऐसी रकम, उन मामलों में जिनको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम के उपबन्ध लागू नहीं होते हैं, उसकी (उस व्यक्ति की) सम्पदा का भाग होती है और वह इसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा वसूल की जा सकती है। कम्पनी और बीमाकृत व्यक्ति के बीच की गई संविदा से नामित हिताधिकारी को कार्यवाही करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है। यदि बीमाकृत व्यक्ति, की मृत्यु पर कम्पनी हिताधिकारी को संदाय करने से इंकार करती है तो विधिक प्रतिनिधि, न कि हिताधिकारी, संविदा प्रवर्तित कराने का हकदार होगा।

इंगलैंड में, वर्ष 1870 के पूर्व कभी-कभी इस कठिनाई पर काबू पाने के लिये बीमा कम्पनी से यह घोषणा करने को कहा जाता था कि कम्पनी पत्नी के लिये न्यासी[4] है। भारत में बीमा अधिनियम, 1938 के पारित होने के पूर्व बीमाकृत व्यक्ति बीमा पालिसी के अधीन अपने फायदाप्रद हित को या तो सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.17 देखिए।
2. **क्लीवर बनाम म्यूचुअल रिजर्व फण्ड लाइफ एसोसिएशन** 1892 क्यू० बी० 147।
3. **ओरियन्टल गवर्नमेंट सिक्यूरिटी लाइफ एश्योरेंस लिमिटेड बनाम अम्मीराजु** आई० एल० आई० मद्रास 35162.
4. **शंकर बनाम उमाबाई** 1913 आई० एल० आर० 37, बाम्बे 171, 479 जिसमें बन्यान आन इन्सोरेंस, पृष्ठ 463 का हवाला दिया गया है।

धारा 130 के अधीन लिखित समनुदेशन द्वारा या न्यास अधिनियम की धारा 5 के अधीन न्यास की घोषणा पर हस्ताक्षर करके ही, निर्निहित कर सकता था। यदि दोनों में से कोई भी प्रक्रिया अपनाई नहीं जाती है तो उसकी मृत्यु होने पर वह पालिसी उसकी सम्पदा का भाग बन जाती है और उसके निष्पादकों या अन्य प्रतिनिधियों के विरुद्ध उसकी पत्नी के पक्ष में कोई न्यास उत्पन्न नहीं होता है[1]।

धारा 6 में एक अनुकल्पी मार्ग का उपबन्ध है और उसी से इसका महत्व दर्शित होता है।

7. धारा 6 से संबंधित विचारार्थ मुद्दे

विस्तारपूर्वक विचारार्थ मुद्दे।

8.20. धारा 6 के महत्व के बारे में इस चर्चा के पश्चात् हमें उस धारा से संबंधित कुछ विषयों की जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है, समीक्षा करनी होगी। यह उल्लेखनीय है कि इस धारा से संविवाद के अनेक मुद्दे उत्पन्न हुए हैं। इस धारा से कुछ अन्य मुद्दे भी उत्पन्न होते हैं। उन महत्वपूर्ण मुद्दों का उल्लेख करना सुविधाजनक होगा, जिन पर इन संविवादों के कारण या अन्यथा, विचार करना आवश्यक है :—

(क) क्या यह धारा विन्यास पालिसियों को लागू होती है[2] ?

(ख) इस धारा में "प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त हो" शब्दों का आशय क्या है[3] ?

(ग) (i) इस धारा को आकृष्ट करने के लिय, पालिसी में किस सूत्र का प्रयोग किया जाना चाहिये[4] ?

(ii) "उसकी पत्नी, या उसकी पत्नी और बालकों, या उनमें से किसी के फायदे के लिये" शब्दों का, जो इस धारा में आते हैं, आशय क्या है ? क्या केवल बालकों के फायदे के लिये कोई पालिसी हो सकती है[5] ?

(घ) बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन किय गये नामनिर्देशन का प्रभाव क्या है[6] ?

(ङ) यदि बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन नामनिर्देशन के कारण कोई मामला इस धारा के अधीन आता है तो क्या नामनिर्देशन को रद्द किया जा सकता है[7] ?

(च) क्या इस धारा के अधीन कोई समाश्रित उपबंध किया जा सकता है[8] ?

(छ) क्या इस धारा के अधीन के कानूनी न्यास को रद्द किया जा सकता है[9] ?

(ज) इस धारा के अधीन वाद कौन ला सकता है[10]?

(झ) क्या वह विधवा, जिसके लिये पालिसी में यह अभिव्यक्त किया गया है कि वह उसके फायदे के लिये है, शासकीय न्यासी की सहायता के लिये बिना स्वयं अपने नाम में वाद ला सकती है[11]?

(ञ) इस धारा का बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के साथ संबंध—यदि एक ही पालिसी के संबंध में एक न्यास है और एक नामनिर्देशन भी है तो उसका परिणाम क्या होता है[12] ?

(ट) क्या पालिसी जारी कर दिये जाने के पश्चात् इस धारा के अधीन न्यास का सृजन किया जा सकता है[13]?

(ठ) न्यास के सृजन के बारे में "समझे जाने के" (डीमिंग) उपबन्ध[14] के संबंध शाब्दिक परिवर्तन की आवश्यकता है।

(ड) जब न्यास का सृजन किया जाता है तब लेनदारों[15] के अधिकार।

(ढ) "उद्देश्य"[16] के प्रति निर्देश करने वाले शब्दों का निर्वचन।

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.18 देखिए।
2. पैरा 8.21 और 8.22 देखिए।
3. पैरा 8.23 से 8.28 तक देखिए।
4. पैरा 8.29 और 8.30 देखिए।
5. पैरा 8.31 से 8.33 तक देखिए।
6. पैरा 8.34 से 8.42 तक देखिए।
7. पैरा 8.43 देखिए।
8. पैरा 8.44 से 8.46 तक देखिए।
9. पैरा 8.47 से 8.48 तक देखिए।
10. पैरा 8.49 और 8.50 देखिए।
11. पैरा 8.51 और 8.52 देखिए।
12. पैरा 8.53 से 8.54 देखिए।
13. पैरा 8.55 देखिए।
14. पैरा 8.56 देखिए।
15. पैरा 8.57 देखिए।
16. पैरा 8.58 देखिए।

हम इन मुद्दों पर क्रमानुसार चर्चा करेंगे ।

मुद्दा (क)–विन्यास पालिसियां।

8.21. पहला प्रश्न यह उत्पन्न हुआ है कि क्या धारा 6 में प्रयुक्त "पालिसी" शब्द के अन्तर्गत विन्यास पालिसी भी है ? किसी हद तक यह प्रश्न इस अन्य प्रश्न से सम्बद्ध है कि क्या धारा 6 के अधीन कोई समाश्रित उपबन्ध अनुज्ञेय है[1] । किन्तु इस प्रश्न का अपना भी महत्व है । कलकत्ता के एक मामले[2] में, जो 1970 में रिपोर्ट किया गया है, इस आशय की उक्तियां हैं कि यह धारा उन विन्यास पालिसियों को लागू नहीं होती हैं जिनके अधीन रकम, मृत्यु होने पर संदेय नहीं है । इसके विपरीत, मुम्बई का 1967 का एक विनिर्णय[3] है जिसमें इससे भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया है और अन्य उच्च न्यायालयों के निर्णय भी हैं[4] जिनमें इस धारा का व्यापक अर्थ लगाया गया है ।

यह दृष्टव्य है कि विन्यास बीमा भी जीवन बीमा है । **गाउल्ड** बनाम **कार्टिस**[5] में यह कहा गया था कि :—

"अपने जीवन पर बीमा" (इन्श्योरेन्स आन हिज लाइफ) शब्दों का सही आशय क्या है ? मेरे विचार से यदि कारक चिह्न 'पर' न हो कर 'का' होता तो उससे महत्वपूर्ण अन्तर पड़ता । मैं इस बात से सहमत हो सकता हूं कि 'जीवन का बीमा' (इन्श्योरेन्स आफ दि लाइफ) उक्ति से, मृत्यु होने पर किसी धनराशि के संदाय किये जाने की प्रत्याभूति अभिप्रेत हो सकती है । "पर" बीमा मेरे विचार से विभिन्न चीज है । इसका अर्थ है किसी धन राशि का उस पर आश्रित बीमा । जीवन का उल्लेख एक अनिश्चित घटना के रूप में किया गया है जिसके घटने पर बीमा की रकम का संदाय किया जाना है, अनिश्चित घटना मृत्यु या जीवन है । जीवन 'पर' बीमा उस धन राशि का बीमा है जो जीवन या मृत्यु की आकस्मिक घटना के होने या न होने के अनुसार संदेय या असंदेय है । इस प्रकार देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि जीवन 'पर' बीमा के अन्तर्गत यह बात है कि यदि किसी नियत तारीख को जीवन बना रहता है तो धन राशि का संदाय करने की उतनी ही बाध्यता है जितनी जीवन के समाप्त होने पर धन राशि का संदाय करने की बाध्यता होती है । जीवन 'पर' बीमा से मानव जीवन की आकस्मिकता पर आश्रित किसी घटना के होने पर धन राशि का संदाय करने की बाध्यता अभिव्यक्त है । यदि यह बात सही है तो इसका अर्थ यह है कि इस पूरे प्रीमियम की कटौती की जा सकती है क्योंकि यह पूर्णतः जीवन 'पर' बीमा है ।

विन्यास पालिसियों के संबंध में सिफारिश।

8.22. हमारा विचार यह है कि धारा 6 के फायदाप्रद उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए इस बात का अभिव्यक्त रूप से उपबन्ध करके कि यह धारा विन्यास पालिसी को लागू होती है, इस विषय से संबंधित शंका को दूर कर दिया जाना चाहिये । एक स्पष्टीकरण जोड़कर इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है । हम तदनुसार सिफारिश करते हैं ।

मुद्दा (ख)–'प्रत्यक्षतः' शब्द के अर्थ।

8.23. धारा 6 में और इंगलैंड के 1882 से पूर्व के अधिनियमों में किन्तु इंगलैंड के 1882 के ऐक्ट की धारा[6] 11 में नहीं, प्रयुक्त 'प्रत्यक्षतः' शब्द से एक ऐसा विषय उत्पन्न होता है जिस पर टिप्पणी करना आवश्यक है । कलकत्ता के एक मामले[7] में न्यायाधीश अमीर अली ने इस शब्द के प्रतिनिर्देश करते हुए यह कहा था कि :—

"मैं समझता हूं कि ये शब्द बाद वाले इंगलैंड के ऐक्टों में से, फालतू होने के कारण निकाल दियेगये थे । मिस्टर घोष ने उनका निर्वचन इस प्रकार किया है कि उसका आशय 'अशर्त' पूर्ण रूप से, या उसी प्रकार कुछ है । मेरे विचार से उनका आशय "अभिव्यक्त रूप से अभिव्यक्त" से अधिक कुछ नहीं है और इसका विपरीत अर्थ विवक्षित न्यास या गुप्त न्यास है ।"

आशय पालिसी में अभिव्यक्त होना चाहिए।

8.24. ऐसा प्रतीत होता है कि पत्नी और बालकों को फायदा देने का आशय पालिसी में अभिव्यक्त किया जाना चाहिये न कि प्रस्थापना में । मद्रास के एक मामले[8] में, बीमा पालिसी में, "किसको संदेय है" स्तंभ में "उसके लिये वैध रूप से हकदार व्यक्ति या व्यक्तियों को" शब्द लिखे थे । प्रतिवादियों की यह दलील थी कि विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 के अधीन न्यास उद्भूत हुआ था । किन्तु उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था

1. आगामी पैरा 8.44 में चर्चा को देखिए ।
2. ला० ई० कार्मो० बनाम **युनाईटेड बैंक**, ए० आई० आर० 1970 कल० 513, 516 (बी० सी० मित्रा और एम० के० मुकर्जी न्यायाधीश) ।
3. **एम० ए० रोडिग्स** बनाम **बी० आर० वालिग** ए० आई० आर० 1967 मु० 465 ।
4. आगे मुद्दा (च) के अधीन चर्चा देखिए पैरा 8.44 से 8.46 तक ।
5. **गाउल्ड** बनाम **कार्टिस** (1913) 3 के० बी० 84, 94 ।
6. इंगलैंड के ऐक्ट की धारा 11 के लिए परिशिष्ट देखिए ।
7. **आशालता वाले मामले** में, ई० ए० आई० आर० 1940 कल० 217, 218, अमीर अली न्यायाधीश ।
8. **कृष्णामूर्ति** बनाम **अंजैया** ए० आई० आर० 1936 मद्रास 635 ।

कि धारा 6 की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं की गई थी। पालिसी में पत्नी और बालकों के विषय में कुछ नहीं कहा गया था किन्तु प्रस्थापना प्ररूप में ऐसा एक कथन था कि पालिसी का उद्देश्य "कुटुम्ब के धरण-पोषण के लिये" था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :—

"यद्यपि जहां यह आशय स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि न्यास का सृजन किया जाना है वहां विधि इस बात की अपेक्षा नहीं करती है कि उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये जो शब्द कानून में आते हैं, तथापि वर्तमान मामले में यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि इस धारा 6 की अपेक्षाओं की पूर्ति कर दी गई है.....धारा 6 में यह अधिनियमित है कि न्यास, दस्तावेज में "प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त होना चाहिये अर्थात् प्रयुक्त शब्द स्पष्ट और असंदिग्धार्थी होने चाहिये। पालिसी से पूर्व दिये गये आवेदन के निबंधनों द्वारा पालिसी चाहे किसी भी प्रयोजन के लिये शासित हो किन्तु विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम के प्रयोजन के लिये जो एकमात्र दस्तावेज देखी जा सकती है वह है पालिसी।

अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि पत्नी के पक्ष में कोई न्यास सृजित नहीं किया गया था।

मद्रास के मामले।

8.25. ऊपर बताए गए मद्रास के मामले[1] का अनुसरण करते हुए उसी उच्च न्यायालय द्वारा 1938 में[2] फिर यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यद्यपि कुछ प्रयोजनों के लिये, बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के बीच विवाद के मामलों में, यह आवश्यक हो सकता है कि प्रस्थापना या विवरण पत्रिका (प्रास्पेक्ट्स) को देखा जाए अथवा प्रास्पेक्ट्स का इस प्रकार अर्थ लगाया जाए मानों वह पालिसी का भाग हो, तथापि विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 के निबंधन स्पष्ट और असंदिग्धार्थी हैं। उस धारा में "बीमा पालिसी" पद को उन शब्दों के सामान्य अर्थ में समझा जाना चाहिये और उसका अर्थ प्रस्थापन और कम्पनी की विवरण पत्रिका नहीं है। इस मामले में पालिसियों में प्रत्यक्षतः यह आशय अभिव्यक्त नहीं था कि वे पत्नी या बालकों के फायदे के लिये थीं। पालिसी में "जिसको संदेय" शीर्षक वाले स्तंभ में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया था वे हैं "प्रख्यापक के समनुदेशिती या प्रीवेट प्राप्त करने वाले उसके निष्पादक या प्रशासक या अन्य विधिक प्रतिनिधि....." यह अभिनिर्धारित किया गया था कि बीमाकृत व्यक्ति की पत्नी के पक्ष में धारा 6 के अधीन कोई न्याय सृजित नहीं हुआ था।

अन्य मामले।

8.26. नागपुर के एक मामले[3] में पालिसी में ऐसा कोई कथन नहीं था कि वह पालिसी उसकी पत्नी या बालकों के फायदे के लिये आशयित थीं। किन्तु पालिसी में यह कहा गया था कि बीमा की **प्रस्थापना और घोषणा से इस बीमे का आधार होना चाहिए** और प्रस्थापना प्ररूप में, जिसमें एक प्रश्न यह था कि "प्रस्थापित बीमा का उद्देश्य क्या है", बीमाकृत व्यक्ति ने लिखा था, "कुटुम्ब की व्यवस्था"। नागपुर उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रयुक्त शब्द "कुटुम्ब की व्यवस्था" बहुत अस्पष्ट है उनसे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि बीमाकृत व्यक्ति का आशय यह था कि उसकी पत्नी और बालकों को पालिसी में सम्पूर्ण हित मिलना चाहिये। इन परिस्थितियों में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि यह मान भी लिया जाए कि प्रस्थापना प्ररूप में किये गए कथन को पालिसी में प्रत्यक्षतः अभिव्यक्त कथन कहा जा सकता है, जिसके बारे में उसे शंका है—तो भी यह कथन इस पालिसी को इस अधिनियम की धारा 6 की परिधि के अन्तर्गत लाने के लिये पर्याप्त नहीं है क्योंकि यह कथन अस्पष्ट है।

8.27. सिन्ध के एक मामले[4] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इससे पहले कि विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) को लागू किया जाए, बीमा पालिसी में "प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त होना चाहिये कि वह उसकी पत्नी के फायदे के लिये है"। इस मामले में स्वीकार किया गया था कि बीमा पालिसी विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं की गई थी। किन्तु अपीलार्थी विधवा ने पालिसी के अधीन देय रकम बीमा कम्पनी से प्राप्त कर ली थी तथा न्यायालय की यह धारणा थी कि उसने पालिसी, कम्पनी को अभ्यर्पित कर दी थी। प्रश्न यह उठा था कि क्या बीमा रकम की कटौती, विभाजन में अपीलार्थी को मिलने वाले हिस्से में से की जानी चाहिये। यह अभिनिर्धारित किया गया कि :—

"यदि तब अपीलार्थी विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 (1) पर निर्भर करना चाहती थी तो उसे न्यायालय का यह समाधान करने के लिये कि पालिसी में प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त है कि वह उसके

---

1. **कृष्णामूर्ति** बनाम **अंजैया** ए० आई० आर० 1936 मद्रा० 635 पूर्ववर्ती।
2. **वेंकटसुब्रामनियाम** बनाम **युनाइटेड प्लान्टर्स एसोसिएशन** ए० आई० आर० 1938 मद्रा० 234, 236।
3. **रवीबाई** बनाम **रतनलाल** ए० आई० आर० 1938 नाग० 321।
4. **मणीबाई** बनाम **भोमजी लालजी**, ए० आई० आर० 1946 सिंध 171; जिसमें **शामदास** बनाम **सावित्रीबाई** ए० आई० आर० 1937, सिंध 181 का अनुसरण किया था।

फायदे के लिये है, अभ्यर्पित पालिसी के पेश किये जाने की मांग करनी चाहिये थी। किसी पालिसी का पत्नी के पक्ष में केवल समनुदेशन पालिसी को विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) के निबंधनों के अन्तर्गत नहीं लाता।"

अपीलार्थी के साक्ष्य को देखते हुए न्यायालय ने कहा कि वह पालिसी उसको उसके पति द्वारा अपनी मृत्यु से दो वर्ष पहले समनुदेशित की गई थी और बाद में उसने पालिसी उसके (पत्नी) के नाम में ली थी। इन परिस्थितियों में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पालिसी धारा 6(1) के अन्तर्गत नहीं आती। अतः यह अभिनिर्धारित किया गया कि बीमा रकम की कटौती विभाजन में अपीलार्थी को मिलने वाले हिस्से में से की जानी चाहिये।

क्या संशोधन साध्य है ?

8.28. इन मामलों से यह प्रकट होता है कि इस मुद्दे पर न्यायालयों ने शब्दों का संकीर्ण अर्थ लगाया है हमने इस प्रश्न पर विचार किया है कि क्या इस आशय का कोई उपबन्ध किया जाना चाहिये कि पत्नी या बालकों को फायदा देने के आशय को प्रस्थापना में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है। किन्तु ऐसे उपबन्ध से समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं और सम्बन्धित पक्षकारों से इस बात की आशा करना असुविधाजनक होगा कि वे उस प्रस्थापना को पढ़े जिसे बीमाकृत के अभिलेखों में बहुत समय पहले जमा करा दिया गया है।

6(1)–प्रयोग में लाए जाने वाले सूत्र के बारे में प्रश्न :

8.29. अब हम अगले प्रश्न पर विचार करेंगे जो धारा 6 द्वारा सोचा गया फायदा प्रदान करने के लिये प्रयोग में लाए जाने वाले सूत्र से संबंधित है। उन विनिश्चित मामलों से जिनका हवाला हम ऊपर दे चुके हैं, कुछ मुख्य मुद्दे उत्पन्न होते हैं :—

(क) प्रस्थापना में "कुटुम्ब की व्यवस्था के लिये" शब्दों के प्रयोग मात्र से पालिसी धारा 6(1) के अन्तर्गत नहीं आती है[1]।

(ख) पत्नी के पक्ष में मात्र समनुदेशन से भी पालिसी धारा 6(1) के अन्तर्गत नहीं आती[2]।

(ग) इसके साथ ही यह आवश्यक नहीं है कि पालिसी में उन्हीं वाक्यांशों का अनुकरण किया जाए, जो इस धारा में प्रयुक्त हुए हैं। मद्रास के एक मामले[3] में उच्च न्यायालय ने (धारा 6 के संदर्भ में) यह अभिनिर्धारित किया है कि :

"उस धारा में यह कहा गया है कि पालिसी में प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त होगा कि यह पत्नी के फायदे के लिये है। यदि उसमें इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है तो इस धारा के अनुसार पालिसी के बारे में यह समझा जाएगा कि वह पत्नी के फायदे के लिये न्यास है। इस धारा की भाषा में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि "अपनी पत्नी के फायदे के लिये" शब्द या इन्हीं जैसे अन्य शब्द पालिसी में आने चाहिये तभी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि धारा के अर्थान्तर्गत पत्नी के पक्ष में कानूनी न्यास सृजित हुआ है। यदि पालिसी में दिये गये शब्दों को पढ़ने पर यह प्रतीत हो कि बीमाकृत व्यक्ति का यह आशय है कि उसकी मृत्यु होने पर पालिसी उसकी पत्नी के फायदे के लिये प्रवृत्त होनी चाहिये तो मैं समझता हूं कि पालिसी के बारे में यह समझा जा सकता है कि वह उसके (पत्नी के) फायदे के लिये न्यास है।"

इस मामले में, अर्जीदार के पति द्वारा ली गई बीमा पालिसी की अनुसूची में यह उपबंध किया गया था कि धन राशि "बीमाकृत व्यक्ति को या यदि उसकी अपनी पत्नी से पहले मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नी अभिरामवल्ली को संदेय थी।" यह अभिनिर्धारित किया था कि यह बीमा की ऐसी पालिसी है जिसमें यह अभिव्यक्त किया गया है कि वह "उसकी पत्नी के फायदे के लिये होगी", यद्यपि "उसकी पत्नी के फायदे के लिये" अभिव्यक्त शब्द पालिसी के निबंधनों में यहीं आए हैं। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि पत्नी के पक्ष में एक कानूनी न्यास का सृजन हुआ था।

---

1. रवीबाई बनाम रतनलाल ए० आई० आर० 1938 नाग० 321, आगामी पैरा 8.26।
2. मणिबाई बनाम भीमजी ए० आई० आर० 1946 सिंध 171, 175, पूर्वगामी पैरा 8.27।
3. अभिरामवल्ली बनाम शासकीय न्यासी ए० आई० आर० 1932 मद्रा० 220, 222।
4. बल देने के लिए अधोरेखांकन हमारी ओर से किया गया है।

किन्तु उच्च न्यायालय ने यह बताया कि कठिनाईयों से बचने के लिए बीमा कम्पनियों को उन मामलों में जहां बीमाकृत व्यक्ति का आशय अपनी मृत्यु की दशा में अपनी पत्नी के पक्ष में न्यास का सृजन करने का है, पालिसी के निबंधनों को लिखते समय कानून[1] में प्रयुक्त शब्दों को अपनाना ।

क्या प्रयोग में लाए जाने वाले सूत्र के संबंध में संशोधन साध्य है ?

8.30. ऊपर निर्दिष्ट निर्णय विधि के बारे में हमने गहराई से विचार किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार के संविवादों पर ऊपर विचार विमर्श किया गया है उनसे बचने के लिये इस धारा का संशोधन अधिक उपयोगी नहीं होगा । बीमाकृत व्यक्ति को अपना विलेख स्वयं लिखना होगा । फिर भी हमारा यह विचार है कि जीवन बीमा निगम को उस सुझाव पर विचार करना चाहिये जो मद्रास उच्च न्यायालय[2] ने उस निर्णय[3] में व्यक्त किया है जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं[4] ।

मुद्दा (ग)(ii)–बालकों के फायदे के लिए पालिसी ।

8.31. इसी प्रकार " उसकी पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों के या उनमें से किसी के फायदे के लिए" शब्दों से एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा होता है । क्या केवल बालकों के फायदे के लिए ली गई पालिसी इस धारा के अधीन आती है ? यह स्थिति मुम्बई के एक मामले[5] में उत्पन्न हुई थी और हम उच्च न्यायालय के निर्णय से उसके तथ्य और विनिश्चित मुद्दों को उद्धृत कर रहे हैं ।

"मैंने धारा 6 को, जहां तक वह इस अपील के प्रयोगों के लिए सुसंगत है, उद्धृत कर चुका हूं इस उद्देश्य कि किसी बीमा पालिसीको धारा 6 लागू हो, यह आवश्यक है कि वह पालिसी किसी विवाहित व्यक्ति द्वारा स्वयं अपने जीवन पर ली जाए । दूसरी अपेक्षा यह है कि पालिसी प्रत्यक्षतः उसकी पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों के या उनमें से किसी के फायदे के लिए होनी चाहिए[6] । वर्तमान पालिसी प्रत्यर्थी सं० 3 के जीवन पर है । यह स्पष्ट है कि यह पालिसी उसकी पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों के फायदे के लिए नहीं है । यह उसके बालकों के अर्थात् अपीलार्थी और उसकी बहन के फायदे के लिए है । प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले श्री अभ्यंकर ने यह दलील पेश की कि वह पालिसी जो केवल बालक या बालकों के फायदे के लिए है, ऐसी पालिसी है जिसकी बाबत 1874 के अधिनियम सं० 3 की धारा 6 में नहीं सोचा गया है । उनकी दलील के अनुसार उसकी पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी" अभिव्यक्ति का अर्थ यह है कि पालिसी चाहे पत्नी के फायदे के लिए हो या पत्नी और बालकों के या पत्नी और बालकों में से किसी एक के फायदे के लिए है । वह कहते हैं कि वह (पालिसी) **पत्नी के बिना केवल बालकों के फायदे** के लिए नहीं हो सकती[7] प्रतिवादियों की ओर से उठाई गई इस दलील से विद्वान् न्यायाधीश सहमत थे । दलील यह है कि "उनमें से किसी" का अर्थ है "पत्नी सहित बालकों में से किसी" न कि **पत्नी के बिना बालकों में से किसी** । इस धारा का सीधा सादा निर्वचन करने पर मैं समझता हूं कि श्री आभ्यंकर द्वारा सुझाए गए अर्थान्वयन को स्वीकार करना सम्भव नहीं है । "उसकी पत्नी और बालकों के" शब्दों का निर्देश एक से अधिक बालकों के प्रति है क्योंकि "बालकों" शब्द के अन्तर्गत एक बालक भी आएगा, श्री आभ्यंकर द्वारा सुझाए गए अर्थान्वयन के अनुसार अभिव्यक्ति उसकी पत्नी और बालकों के" का निर्देश पत्नी और एक से अधिक बालकों के फायदे के लिए पालिसी के प्रति होना चाहिए न कि पत्नी और एक बालक के फायदे के लिए । उचित निर्वचन यह होगा कि जब शब्द "बालकों" का प्रयोग किया जाता है तो इसके अन्तर्गत एक बालक भी आ जाता है । यदि ऐसा न होता तब भी आगे को अभिव्यक्ति 'उनमें से कोई' पत्नी और बालक के फायदे के लिए पालिसी के मामले के लिए उपबन्ध करने के वास्ते आवश्यक होता प्रयुक्त भाषा को देखते हुए मुझे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि ऐसी पालिसी जो "पत्नी के फायदे के लिए नहीं हो बल्कि केवल बालकों के फायदे के लिए हो, धारा 6 की परिधि में नहीं आती ।"

1882 के इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 11 ।

8.32. यह उल्लेखनीय है कि इस विषय पर इंग्लैण्ड के ऐक्ट, मैरिड विमन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 में की धारा 11 (जिसमें ऐसा ही उपबन्ध है) अधिक स्पष्ट है । उस धारा का तात्विक भाग इस प्रकार है,[8] अर्थात् :

"किसी पुरुष द्वारा अपने स्वयं के जीवन पर ली गई पालिसी जो कि वह उसकी पत्नी या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों के या उनमें से किसी के फायदे के लिए अभिव्यक्त है अथवा किसी स्त्री द्वारा अपने जीवन पर ली गई पालिसी जो उसके पति या उसके बालकों या उसके पति और बालकों के या उनमें से किसी के फायदे के लिए अभिव्यक्त है; उसमें नामित व्यक्तियों के पक्ष में न्याय सृजित करेगी[9] ।

---

1. बल देने के लिए अधोरेखांकन हमारी ओर से किया गया है ।
2. **अभिरामवल्ली बनाम शासकीय न्यासी** ए० आई० आर० 1932, मद्रा० 222 देखिए ।
3. पूर्वगामी पैरा 8.29 देखिए ।
4. आगामी पैरा 8.42 देखिए ।
5. **एम० ए० रोड्रिग्स बनाम बी० आर० बालिगा** ए० आई० आर० 1967 बाम्बे 465, 467 पैरा 6 (न्या० गोखले) ।
6. **एम० ए० रोड्रिग्स बनाम बी० आर० बालिगा** ए० आई० आर० 1967 बाम्बे 465, 467 पैरा 5
7. बल देने के लिए मोटे शब्द हमारी तरफ से किए गए हैं ।
8. धारा 11 मैरिड विमन्स प्रापर्टी ऐक्ट 1882 (इंग्लैंड) (परिशिष्ट 3 देखिए) ।
9. पूर्वगामी पैरा 8.32 ।

इस प्रकार इस विषय में इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा की शब्द रचना अधिक विनिर्दिष्ट है।

धारा 6 में बालकों के संबंध में संशोधन करने की सिफारिश।

8.33. हम सिफारिश करते हैं कि 1874 के अधिनियम की धारा को स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए और व्यापक बना दिया जाना चाहिए जिससे कि बालकों को फायदा दिया जा सके (जैसा कि इंग्लैण्ड के ऐक्ट में है) अर्थात् यदि पत्नी हिताधिकारी न भी हो तब भी बालकों को फायदा मिल सके। निस्सन्देह यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि विवाहित स्त्री विषयक विधान में केवल बालकों के लिए उपबन्ध करना बेतुकी बात है। किन्तु हमारा विचार है कि व्यावहारिक सुविधा ऐसे संशोधन का औचित्य है। बालकों से सम्बन्धित पालिसियों के लिए पृथक् विधि बनाना उपबन्धों को दुहराना होगा।

मुद्दा (घ)—बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन किया गया नाम-निर्देशन।

8.34. अगला प्रश्न बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन किए गए नाम निर्देशन के प्रभाव के सम्बन्ध में है[1]। इस सम्बन्ध में धारा 6 में प्रयुक्त "..... के फायदे के लिए" शब्दों से कुछ कठिनाई पैदा हो जाती है। क्या इन शब्दों का यह अर्थ है कि बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन किया गया नाम निर्देशन इस फार्मूले को पूरा करता है? उच्च न्यायालयों का यह मत है कि बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन किया गया नाम-निर्देशन धारा 6 की अपेक्षाओं की पूर्ति नहीं करता। यह मत इलाहाबाद[2] के आन्ध्र प्रदेश[3], कलकत्ता[4] और मद्रास[5] उच्च न्यायालयों का है। हम कुछ प्रकाशित निर्णयों का उल्लेख करेंगे।

इलाहाबाद के एक मामले में[6] यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 6(1) से स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि पालिसी पत्नी के फायदे के लिए ली जानी चाहिए। यह नहीं कहा गया है कि किसी अन्य व्यक्ति के फायदे के लिए ली गई पालिसी पश्चात्वर्ती नाम-निर्देशन द्वारा पत्नी के फायदे के लिए ली गई मानी जा सकती है। पत्नी के पक्ष में पश्चात्वर्ती नाम-निर्देशन करना केवल उसे (पत्नी को) रकम लेने के लिए प्राधिकृत करना है और यह उसके फायदे के लिए पालिसी लेना नहीं है। कोई पालिसी दो बार नहीं ली जा सकती। इसलिए जहां पत्नी को आरम्भ से नहीं बनाया गया है वहां पालिसी धारा 6(1) के अर्थ में पति द्वारा अपनी पत्नी के फायदे के लिए नहीं ली हिताधिकारी गई थी और केवल यह तथ्य कि उसने ऐसा पश्चात्वर्ती नाम-निदर्शन किया है जैसा कि बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन करने के लिए वह सशक्त है पालिसी को कोई ऐसी पालिसी नहीं बनाता जिसको ऐसे नाम-निर्देशन के कारण धारा 6(1) लागू होती है।

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि तत्कालिक या समाश्रित, साम्यापूर्ण और फायदाप्रद हित पालिसी के प्रारम्भ में ही सृजित किया जाना चाहिए। यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि इसे विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) लागू होती है तो "आरम्भ में ही पत्नी या बालकों या उनमें से किसी में ऐसा हित सृजित किया जाना चाहिए।" अन्यथा यदि पालिसी के लिए जाने के पश्चात् कोई न्यास, बाद में किसी व्यक्ति के पक्ष में सृजित किया जाना है तो यह विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) के अधीन सृजित नहीं किया जा सकता बल्कि किसी अन्य न्यास के समान उसका सृजन किया जाना चाहिए ..... । हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बीमा अधिनियम की धारा 39 और विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) एक दूसरे की पूरक नहीं हैं और यह कि नाम-निर्देशन का जो अधिकार बीमा अधिनियम की धारा 39 द्वारा पालिसी धारक को प्रदत्त किया गया उसको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6(1) में इस प्रकार से नहीं पढ़ा जा सकता कि वह उस अधिनियम के स्पष्ट आशय को परिवर्तित करता है।"

उपरोक्त आधार पर पत्नी की अपील खारिज कर दी गई थी।

आन्ध्र से दृष्टांतरूप मामले।

8.35. आन्ध्र के एक मामले[7] में तथ्य इस प्रकार थे, अर्थात् एक ऋणी ने अपीलार्थी के पक्ष में 1950 में एक वचनपत्र निष्पादित किया अपीलार्थी ने 1952 में ऋणी की, जो बाद के लम्बित रहने के दौरान मर गया था, विधवा और पुत्र के विरुद्ध डिक्री प्राप्त कर ली थी। अपीलार्थी ने ऋणी द्वारा अपने जीवन पर ली गई एक जीवन पालिसी

---

1. पूर्वगामी पैरा 5.5
2. ए० आई० आर० 1958 इलाहाबाद, 569 (देखिए आगामी पैरा 8.34)।
3. ए० आई० आर० 1957 आन्ध्र प्रदेश 757, 758 (देखिए आगामी पैरा 8.35)।
4. ए० आई० आर० 1956 कलकत्ता 275, 276 (देखिए आगामी पैरा 8.36)।
5. ए० आई० आर० मद्रास 105 (देखिए आगामी पैरा 8.38)।
6. शांतिदेवी बनाम श्री रामलाल ए० आई० आर० 1958 (इलाहाबाद) 560।
7. ब्रह्मात्मा बनाम वेंकटरमन राव ए० आई० आर० ए० पी० 757।

को डिक्री के निष्पादन में कुर्क कराना चाहा। विधवा ने यह आपत्ति की कि बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन नाम-निर्देशित किए जाने के कारण वही पालिसी के आगम के लिए हकदार है और उसके पति के लेनदार को कोई अधिकार नहीं है। निचले न्यायालय ने इस आपत्ति को स्वीकार कर लिया था। डिक्री धारक ने उच्च न्यायालय में अपील की।

उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39 के अधीन पालिसी धारक का अपने द्वारा किए गए नाम-निर्देशन के होते हुए भी पालिसी में हित बना रहता है। नाम-निर्देशन पालिसी में उसके अधिकार से उसे निरर्हित नहीं करता और उस पर उसका व्ययन का अधिकार बना रहता है। नाम-निर्देशन के कारण, हक नाम-निर्देशिती को संक्रान्त नहीं होता है। फलतः नाम-निर्देशिती पालिसी में पालिसी धारक के सभी दायित्वों के अधीन रहते हुए सम्पत्ति पाता है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 39(2) और 39(4) के अधीन पालिसी धारक वह पालिसी वसीयत द्वारा किसी व्यक्ति को देने के लिए या उसका समनुदेशन करने के लिए सक्षम है, और इससे नाम-निर्देशन स्वयमेव रद्द हो जाता है, जिसका तात्पर्य है कि नाम-निर्देशिती का दस्तावेज में कोई निहित अधिकार नहीं है .....।"

"मेरे लिए यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या उपधारा (7) के परन्तुक को देखते हुए विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन किसी नाम निर्देशन को लागू हो सकती है। यह स्पष्ट है कि यह .....नाम-निर्देशन को लागू नहीं होती।"

इसलिए इस मामले में धारा 6 लागू नहीं हुई और नाम-निर्देशिती का अधिकार उसके पति के किसी दायित्व के उन्मोचन के अधीन रहते हुए था।

कलकत्ता का मामला।

8.36. कलकत्ता के एक मामले[1] में मृतक के विन्यास बीमा पालिसी में नाम-निर्देशन इस प्रकार था। मैं अपनी पत्नी और अपने दामाद, उत्तरजीवी या उत्तरजीवियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में नाम-निर्देशित करता हूं जो उस सूरत में जबकि मेरी मृत्यु उनसे पहले हो जाए, उक्त पालिसी के अधीन धन प्राप्त करेंगे।

विधवा द्वारा यह दलील पेश की गई कि उपर्युक्त नाम-निर्देशन के निबन्धनों के अधीन उसे संदेय रकम मृतक निर्णीत ऋणों की सम्पदा का भाग नहीं थी। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बीमा अधिनियम की धारा 39 नाम-निर्देशिती को बीमा की रकम ऐसे नाम-निर्देशिती और बीमा कम्पनी के बीच प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करती है किन्तु यह सार्वजनिक रूप से उस रकम के स्वामित्व के हक के लिए उपबन्ध नहीं करती।

".....वस्तुतः ऐसी बीमा की रकम बीमाकृत की सम्पदा का भाग है और उसी रूप में वह बनी रहेगी। इसमें केवल यह उपबन्ध है कि विन्यास की अवधि समाप्त होने के पूर्व मृत्यु होने की दशा में, बीमाकृत के स्थान पर कौन रकम प्राप्त करेगा। रकम प्राप्त करने के हक से उस धन का सर्वबंधी हक सृजित होना आवश्यक नहीं है, जो सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध वैध कहा जा सके।"

यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि इस मामले में नाम-निर्देशन के निबन्धनों से यह दर्शित नहीं होता था कि पालिसी विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 के अर्थ में प्रत्यक्ष रूप से पत्नी के फायदे के लिए अभिव्यक्ति थी। इस नाम-निर्देशन के निबन्धनों को अशर्त नाम-निर्देशन अभिनिर्धारित किया गया जो बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन आता है। यहां नाम-निर्देशन पत्नी और/या बालकों के लिए नहीं बल्कि संयुक्त नाम निर्देशिती के लिए था जिसमें से एक पत्नी और दूसरा दामाद था।

न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि क्योंकि बीमा अधिनियम की धारा 39 विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 के अधीन सृजित न्यासों को लागू नहीं होती। ऐसे न्यास अभिव्यक्त रूप से पालिसी धारक के नियंत्रण के परे होते हैं और उनकी बाबत अभिव्यक्त रूप से यह कहा जाता है कि वे पालिसी धारक की सम्पदा के भाग नहीं हैं। किन्तु पालिसी धारक दोनों तरफ से फायदा प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् एक ओर पालिसी धारक नाम-निर्देशन के बावजूद व्ययन का पूरा अधिकार रखे और उसके साथ ही नाम-निर्देशिती को रकम में हक प्राप्त हो। इसलिए न्यायालय ने विधवा का जो मात्र नाम-निर्देशिती थी, आवेदन खारिज कर दिया।

---

1. रामबल्लभ बनाम गंगाधर ए० आई० आर० कलकत्ता 275.

ने यह अभिनिर्धारित किया कि युक्तियुक्त निर्वचन केवल यह है कि पति ने नाम-निर्देशन को रद्द करने का अधिकार सुरक्षित रखा था। इन परिस्थितियों में, विवाहित स्त्री सम्पति अधिनियम की धारा 6 लागू नहीं हो सकती है।

समनुदेशन की स्थिति का भिन्न होना।

8.40. यह तो थी पालिसी में नाम-निर्देशन की स्थिति। इस-परिचर्या का परिणाम यह है कि नामनिर्देशन नाम निर्देशिती को रकम वसूल करने का अधिकार मात्र देता है और कोई हक प्रदान नहीं करता।

इसके विपरीत, किसी पालिसी के समनुदेशन की स्थिति भिन्न है। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 38(5) के अधीन किसी समनुदेशन का यह प्रभाव होता है कि पालिसी के अधीन केवल समनुदेशित ही हकदार व्यक्ति होता है और ऐसा व्यक्ति उन सभी दायित्वों और साम्या के अधीन भी रहेगा जिसके अधीन समनुदेशक समनुदेशन की तारीख पर था। किन्तु जैसा कि ऊपर बताया गया है[1] और जैसा कि बीमा अधिनियम की धारा 39(1) से प्रतीत होता है, नाम-निर्देशन से केवल यह अभिप्रेत है कि नाम-निर्देशित व्यक्ति वह व्यक्ति है जिसे बीमाकृत की मृत्यु होने की दशा में पालिसी के अधीन देय रकम का भुगतान किया जाएगा। समनुदेशन अप्रतिसंहरणीय होता है, किन्तु नाम-निर्देशन पालिसी के संदाय के लिये परिपक्व होने के पूर्व किसी भी समय रद्द किया या परिवर्तित किया जा सकता है। बीमाकृत के जीवन काल के दौरान पालिसी के परिपक्व होने की दशा में, नाम-निर्देशन का कोई प्रभाव नहीं होगा और उस दशा में पालिसी की रकम बीमाकृत को संदेय होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि समनुदेशिती पालिसी धन को प्राप्त करने का ही हकदार नहीं है बल्कि उसे पालिसी धन का अधिकार भी प्राप्त है। किन्तु नाम-निर्देशिती मात्र ऐसा व्यक्ति है जो उस दशा में जिसमें पालिसी बीमाकृत व्यक्ति जीवित न रहे, पालिसी की रकम प्राप्त करने का अधिकारी होगा। उसे पालिसी के अधीन शोध्य रकम में कोई हक नहीं है।

न्यास के "उद्देश्य" का अभिप्राय।

8.41. इस धारा में न्यास के "उद्देश्य" शब्द का अर्थ रोचक है। मद्रास के एक मामले[2] में कौटुम्बिक ठहराव के प्रभाव और उन प्रतिवादियों द्वारा जिन्होंने उसका निष्पादन किया था, निर्मोचन विलेख के निष्पादन पर विचार किया गया था यह दलील पेश की गई कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 6 में स्पष्ट भाषा में यह उपबंध है कि "**जब तक कि उस न्यास का कोई उद्देश्य शेष रहता है**" ऐसी निर्मुक्ति अविधिमान्य और अप्रवर्तनशील है। यह कभी भी वादी की सम्पत्ति नहीं हो सकती। एक प्रश्न यह उठा था कि धारा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "उद्देश्य" का अर्थ हिताधिकारी है या प्रयोजन है। इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया गया क्योंकि हिताधिकारियों ने ठहराव का प्रतिसंहरण कर दिया था।

बीमा अधिनियम का संशोधन करने की सिफारिश।

8.42. इस विषय के सभी पहलुओं पर सावधानी पूर्वक विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऊपर वर्णित विभिन्न उपबन्धों में अन्तर्विष्ट वर्तमान कानून स्कीम जटिल हो सकती है किन्तु यह जटिलता मुख्य रूप से इस कारण है कि कानून उन विभिन्न प्रकार के परिणामों के लिए उपबंध करने के लिए उत्सुक है, जो जीवन बीमा कराने वाले व्यक्ति प्राप्त करना चाहते हों। हो सकता है कि बीमाकृत (व्यक्ति) केवल यह चाहता हो कि उसके वारिसों और बीमा करने वालों के बीच कोई संविवाद न हो उसके लिए नामनिर्देशन यथोचित उपाय है। संभव है वह इससे अधिक कुछ करना चाहे और पालिसी के अधीन सभी अधिकार अन्तरित करने का विनिश्चय करे। तब वह समनुदेशन कर सकता है। या यदि वह धारा 6 द्वारा शासित न्यास सृजित करने की इच्छा रखता है तो वह धारा 6 की कम विस्तृत मशीनरी को अधिमान दे सकता है।

अतः कानूनी उपबंधों में वही भिन्नता है जो बीमाकृत व्यक्तियों के आशय में होती है। इसीलिए वह जटिलता है जो प्रत्यक्ष है। यह जटिलता पूर्वोक्त कारणों से अपरिहार्य है। फिर भी ऐसा सुधार करना संभव है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट मामले में यह विनिश्चय करना वर्तमान की अपेक्षा सरल होगा कि ठहराव धारा 6 के अधीन आता है या नहीं। मद्रास उच्च न्यायालय[3] के एक निर्णय में दिया गया सुझाव हमारे ध्यान में है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। उस सुझाव को क्रियान्वित करने के लिए हम अपनी सिफारिशें[4] पुनः दुहराते हैं।

उस सुझाव को जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है, कानूनी प्रभाव देने के लिए यह सुविधापूर्ण होगा, कि बीमा अधिनियम, 1938 में यथोचित उपबंध जोड़ दिया जाए जिससे कि इस बारे में संविवादों की संख्या कम से कम हो जाएगी कि धारा 6 लागू होती है या नहीं। हम बीमा अधिनियम[5] मे एक नयी धारा अन्तः स्थापित[6] किये जाने की सिफारिश करते हैं।

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.37।
2. **इनायतुल्ला बनाम जोलानी** ए० आई० आर० 1942 मद्रास 136, 138।
3. **अभीराम वल्ली बनाम आफिशियल ट्रस्टी** ए० आई० आर० 1932 मद्रास 222 (पूर्वगामी पैरा 6.29)।
4. पूर्वगामी पैरा 8·29 और 8·30 में मुद्दा ग (i) संबंधी चर्चा देखिए।
5. देखिए आगामी पैरा 15.5।
6. बीमा अधिनियम से संबंधित अन्य मुद्दे के लिए आगामी पैरा 8.53 देखिए।

8.43. 1874 के अधिनियम की धारा 6 की फिर चर्चा करते हुए हम कह सकते हैं कि अगला प्रश्न पालिसी के नाम-निर्देशन के प्रतिसंहरण के प्रभाव के संबंध में है। कलकत्ता के एक मामले में[1] यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पति द्वारा बीमा पालिसी पर ऐसा नाम-निर्देशन जिसमें पति ने नाम-निर्देशन को रद्द करने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा है, उस मामले को धारा 6 के प्रभावक्षेत्र से परे कर देता है। कलकत्ता[2] का एक और विनिर्णय इस आशय का है कि धारा 6 के अधीन न्यास सृजित हो जाने के पश्चात् पालिसी रद्द नहीं की जा सकती। मुद्दा (ङ) —नाम-निर्देशन का प्रतिसंहरण और पालिसी का अभ्यर्पण।

इन विनिर्णयों के कारण धारा 6 में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

8.44. एक अन्य प्रश्न यह उठा है कि क्या धारा 6 के अधीन पत्नी और बालकों के फायदे के लिए समाश्रित उपबंध किया जा सकता है। मुद्दा (च)—क्या समाश्रित उपबन्ध अनुज्ञेय है।

इस प्रश्न पर विचार परस्पर विरोधी हैं। नागपुर के एक मामले में[3] और मुम्बई के एक पूर्वतर मामले में[4] इस प्रश्न पर संकीर्ण दृष्टिकोण से विचार किया गया अर्थात् यह कि यदि फायदा समाश्रित है तो धारा 6 लागू नहीं होगी।

कलकत्ता[5] और मद्रास[6] उच्च न्यायालयों द्वारा तथा मुम्बई के एक पश्चात्वर्ती मामले[7] में भी विपरीत दृष्टिकोण अपनाया गया, अर्थात् यह कि फायदे को समाश्रित उदाहरणार्थ उसे पत्नी के पूर्व पति की मृत्यु पर समाश्रित कर दिए जाने पर भी धारा 6 लागू होगी। मुम्बई के पश्चात्वर्ती मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष मुम्बई उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती मामले का हवाला नहीं दिया गया था।

8.45. कलकत्ता के मामले[8] में यह कहा गया था कि सभी जीवन पालिसियां प्रकृति से ही किसी घटना पर समाश्रित रहते हुए प्रवृत्त होती हैं। विन्यास पालिसियों में दो समाश्रिताएं होती हैं—निश्चित समय पर बीमाकृत का जीवित रहना या उस समय से पूर्व उसकी मृत्यु। "विन्यास पालिसी पूर्णतया जीवन बीमा की संविदा है—जीवन बीमा की दोहरी संविदा है जिसमें एक दशा घटना मृत्यु है और दूसरी दशा में घटना जीवित रहना है।" "इस निष्कर्ष के लिए इंग्लैण्ड के एक मामले[9] पर निर्भर किया गया। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पालिसी पति के जीवन पर और पत्नी के फायदे के लिए थी और इसे तत्वहीन समझा गया कि यह विन्यास पालिसी थी।

मद्रास के एक मामले में[10] बीच का दृष्टिकोण अपनाया गया है और उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब तक घटना घटित नहीं होती पति पालिसी का समनुदेशन कर सकता है। यह निर्वचन कई मामलों में धारा को विफल बना सकता है। इस विशेष मुद्दे पर हम मद्रास के एक पश्चात्वर्ती मामले[11] में अपनाये गए इस दृष्टिकोण का कि न्यास आरम्भ से ही सृजित हो जाता है, अधिमान देते हैं।

8.46. इस विषय के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि धारा का अभिव्यक्त रूप से संशोधन करके व्यापक दृष्टिकोण को संहिताबद्ध किया जाए। हम सिफारिश करते हैं कि धारा का इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि समाश्रित न्यास उसके अधीन आ सके। सिफारिश।

8.47. धारा 6 से उत्पन्न होने वाला अगला प्रश्न यह है कि क्या धारा 6 के अधीन उद्भूत होने वाला न्यास प्रतिसंहृत किया जा सकता है। (छ) कानूनी न्यास का रद्दकरण।

---

1. सुरेजन बनाम खेम चन्द्र ए० आई० आ० 1946 कलकत्ता 44।
2. ईश्वरी दास बनाम गोपाल चन्द ए० आई० आर० 1915 कलकत्ता 9, 10।
3. रबी बाई बनाम रतनलाल ए० आई० आर० 1938 नागपुर 321।
4. दीनबाई बनाम रमनशा ए० आई० आर० 1934 मुम्बई 296, 299।
5. आशालता दासी का मामला, ए० आई० आर० 1940 कलकत्ता 217 आगामी पैरा 8.45।
6. (क) अभिराम बल्ल बनाम आफिसियल ट्रस्टी ए० आई० आर० 1932 मद्रास 220, देखिए पैरा 8.30।
   (ख) बंगाल इन्श्योरेन्स कम्पनी बनाम वेलायमलाल ए० आई० आर० 1937 मद्रास 571, 574 (जिसमें फ्लीटवुड पालिसी (1926) 1 चा० 48 का अनुसरण किया गया)।
   (ग) कृष्णन् चोट्टर बनाम वेलायी अम्माल ए० आई० आर० 1938 मद्रास 6।
7. एम० ए० आर० रोड्रिग्स बनाम बी० आर० बालिया ए० आई० आर० 1967 मुम्बई 4।
8. आशालाल दासी का मामला ए० आई० आर० 1940 कलकत्ता 217, 218 (पूर्वगामी पैरा 8.44)।
9. गाउल्ड बनाम गुर्टिस (1913) 3 क० बी० 84, 95, 97।
10. ललि थम्बल बनाम गार्जियन इंश्योरेंस कम्पनी ए० आई० आर० 1937 मद्रास 645, 647।
11. कन्नवलाल बनाम सुब्बारैया ए० आई० आर० 1938 मद्रास 413।

सिंध के एक मामले[1] में यह कहा गया है कि धारा 6 के अधीन सृजित न्यास को प्रतिसंहृत नहीं किया जा सकता। यहाँ मामला समनुदेशन का मामला था। न्यायालय ने यह कहा "यह धारा इंग्लैण्ड के ऐक्ट के उपबंधों से ली गई है (मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1970 की धारा 10) और इंग्लैण्ड की विधि में इस पर मतभेद है कि "उद्देश्य" की अभिव्यक्ति का अर्थ क्या है। [2-3]क **एक दृष्टिकोण के अनुसार अभिव्यक्ति "उद्देश्य" का अभिप्राय हिताधिकारी है और दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इसका अर्थ प्रयोजन है**। देखिए (1930) 2 चा० 37 और (1933) 2 चा० 126[4]"।

"हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस मतभेद की चर्चा करना इस दृष्टि से आवश्यक नहीं है कि मैं निर्मुक्ति दस्तावेज के प्रभाव पर विचार कर रहा हूं। विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 में यह उपबंध है कि पालिसी की रकम तभी तक बीमाकृत की सम्पदा का भाग नहीं होगी जब तक न्यास का उद्देश्य शेष रहता है। किन्तु यदि न्यास का पालन असम्भव हो जाए या न्यास विफल हो जाए या अन्यथा उसकी पूर्ति हो जाए या वह समाप्त हो जाए तो पालीसी की रकम बीमाकृत की सम्पदा का भाग होगी। 1933 चा० 126[5] में लार्ड जस्टिस रोमर ने मेरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 की धारा 11 का, जो भारतीय अधिनियम की धारा 6 के समान है, अर्थ लगाते हुए यह कहा था कि परन्तुक का अर्थ है कि जब तक विन्यास समाप्त नहीं हो जाता पालिसी की रकम बीमाकृत की सम्पदा का भाग नहीं होगी और न वह उसके ऋण के अधीन होगी।

"इसलिए न्यास, उसका प्रतिसंहरण किए जाने से समाप्त हो सकता है। न्यास अधिनियम की धारा 78(क) में उपबंध है कि जहां सभी हिताधिकारी अपनी राय से संविदा करने के लिए सक्षम हैं वहां न्यास प्रतिसंहृत किया जा सकता है इसलिये प्रतिवादी उनके पक्ष में सृजित किये गए न्यास को प्रतिसंहृत करने में पूर्णतया सक्षम थे। न्यास अधिनियम की धारा 58 के अधीन यह भी स्पष्ट है कि हिताधिकारी अपना हित अन्तरण करने के लिए सक्षम है। प्रतिवादियों द्वारा पालिसियों के अधीन लिए गए हित, यद्यपि समाश्रित हैं, फिर भी अन्तरित किए जा सकते हैं क्योंकि पालिसियों के अधीन सृजित अधिकार केवल वाद लाने के अधिकार की प्रकृति का अधिकार नहीं है--देखिए 8 रेंज 8[6]। यदि हिताधिकारी अपना हित अन्तरित करने के लिए सक्षम है तो वह इसे निर्मुक्त भी कर सकता है।

सिफारिश--कोई परिवर्तन नहीं।

8.48. हम समझते हैं कि जिन विनिर्णयों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनमें अधिकथित विधि में कोई संशोधन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(ज) वे व्यक्ति जो वाद ला सकते हैं।

8.49. उस स्थिति में कि जब धारा 6 के अधीन आने वाली पालिसी परिपक्व हो जाती है और कोई विनिर्दिष्ट न्यासी नहीं है तो इस विषय में कि कौन व्यक्ति वाद ला सकता है कुछ कठिनाई है।

(i) इस विषय में एक दृष्टिकोण यह है कि केवल शासकीय न्यासी ही वाद ला[6] सकता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार जब तक कि शासकीय न्यासी न्यास का दावा त्याग न करे, विधवा दावा नहीं कर सकती।

(ii) दूसरा दृष्टिकोण यह है कि इस धारा के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिए चाहे पति द्वारा अपने जीवन काल में विलेख द्वारा या भारतीय न्यास अधिनियम के अधीन न्यायालय द्वारा न्यासी नियत किया जाना चाहिए और न्यायालय शासकीय न्यासी नियुक्त करने के लिए बाध्य नहीं है[7]। यह दृष्टिकोण इस सिद्धांत पर आधारित प्रतीत होता है कि शासकीय न्यासी अधिनियम, 1913 जो विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 के पश्चात् पारित किया गया था, धारा 6 पर अध्यारोही है।

(iii) तीसरा दृष्टिकोण मद्रास के एक निर्णय[8] और कलकत्ता के एक मामले[9] द्वारा निरूपित किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वह न्यासी जिसका धारा 6 में उल्लेख किया गया है, शासकीय न्यासी अधिनियम द्वारा सृजित कॉर्पोरेशन सोल नहीं है।

---

1. शमदास बनाम सावित्री बाई ए० आई० आर० 1937 सिंध 181, 188।
2. कोलियर का मामला (1930) 2 चा० 37, 39 एल० जे० चा० 241, 143 एल० टी० 329।
3. इस मुद्दे के लिए देखिए पैरा 8.58।
4. कजिन्स बनाम सन लाइफ एश्योरेंस सोसाइटी (1933) चा० 126 : 102 एल० जे० चा० 114।
5. कजिन्स बनाम सन लाइफ एश्योरेंस सोसाइटी (1933) चा० 126।
6. मयैत बनाम आफीशियल एसाइनी ए० आई० आर० 1930 पी० सी० 17, 8 रेंज 8.57 आई० ए० 10 (पी० सी०)।
7. लक्ष्मी बनाम सन लाइफ एश्योरेंस कं० लि० ए० आई० आर० 1934 मद्रास 264, 265।
8. हरि दासी बनाम कनेडियन इंश्योरेन्स कं० ए० आई० आर० 1937 कलकत्ता, 379, 380 (आगामी)।
9. ए० आई० आर० 1955 एन० यू० सी० (मद्रास) 3895।
10. आशालता का मामला, ए० आई० आर० 1940 कलकत्ता 169, 170।

8.50. हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है जिसमें अनिश्चितता समाप्त की जानी चाहिए। अनिश्चितिता के अतिरिक्त इसमें एक सारभूत विषय भी है जिस पर विचार किया जाना चाहिए। क्या शासकीय न्यासी को बीच में घसीटना आवश्यक है ? जब यह अधिनियम अधिनियमित किया गया था (1874 में), भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 पारित नहीं हुआ था तथा न्यासियों और हिताधिकारियों के अधिकार और दायित्व संहिताबद्ध नहीं किए गए थे। पालिसीधारक के न्यासी बनाने की सिफारिश।

अब स्थिति भिन्न हो गई है और उन मामलों में जहां पालिसीधारक किसी व्यक्ति को न्यासी के रूप में नियुक्त नहीं करता है, पालिसीधारक या उसके वारिसों को न्यासी बनाना सुविधापूर्ण होगा। ऐसा उपबंध इंग्लैण्ड[1] में है और ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि इंग्लैण्ड के उपबन्ध के इस भाग से कोई गम्भीर कठिनाई पैदा हुई है। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि इस धारा को ऊपर बताई गई रीति में, संशोधित किया जाना चाहिए।

8.51. हम देखते हैं कि एक प्रश्न यह उठा है कि क्या विधवा शासकीय न्यासी की सहायता बिना वाद ला सकती है। हरि दासी के मामले[2] में कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश लार्ड विलियम्स ने कहा था कि :— मुद्दा (झ)—विधवा द्वारा शासकीय न्यासी की सहायता बिना वाद।

"पहली बार देखने पर तो मेरा यह विचार था कि शासकीय न्यासी उसके ऊपर धारा 6 द्वारा स्पष्ट रूप से अधिरोपित न्यास से इनकार नहीं कर सकता किन्तु और विचार करने पर मुझे यह लगता है कि यह स्पष्ट है कि विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 और शासकीय न्यासी अधिनियम, 1913 के उपबंधों में असंगतियां हैं। पश्चात्कथित अधिनियम की धारा 7 के अधीन शासकीय न्यासी पर किसी न्यास के अधिरोपित किए जाने से पूर्व शासकीय न्यासी की सहमति आवश्यक है। वह न्यासी के रूप में तभी कार्य कर सकता है जब वह ऐसा उचित समझे और उपधारा (iii) के अधीन, वह किसी न्यास को पूर्णतया इनकार कर सकता है या उन शर्तों पर स्वीकार कर सकता है जो वह अधिरोपित करे। उपधारा (vii) में यह उपबंध है कि एक मात्र न्यासी होगा। ये उपबंध विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 6 उपबंधों से स्पष्ट रूप से असंगत हैं क्योंकि वे उपबंध आवश्यक हैं और किसी ऐसी रकम के सन्दर्भ में जैसी कि वर्तमान वाद में है यह उपबंध किया गया है कि उसकी स्थिति वही होगी मानो वह 1864 के अधिनियम 17 की धारा 10 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से उसका न्यासी नियुक्त किया गया हो, अर्थात् उसकी सहमति मान ली जाएगी क्योंकि यह मान लिया जाता है कि यह सम्यक् से नियुक्त न्यासी है।"

उन्होंने यह भी कहा कि शासकीय न्यासी अधिनियम जिसका उल्लेख धारा 6 में किया गया था 1864 का अधिनियम था जिसके अधीन शासकीय न्यासी की स्थिति 1913 के अधिनियम के अधीन की स्थिति से भिन्न थी। इसलिए 1864 के अधिनियम के प्रति निर्देश को शासकीय न्यासी अधिनियम, 1913 के प्रति निर्देश नहीं पढ़ा जा सकता है।

8.52. हम धारा 6 के उस भाग को पुनरीक्षित करने की पहले ही सिफारिश[3] कर चुके हैं जिसमें शासकीय न्यासी का उल्लेख है। उस सिफारिश को दृष्टिगत रखते हुए यह विवाद जिसका कि अभी उल्लेख किया गया है समाप्त हो जाएगा। शासकीय न्यासी के बारे में।

8.53. अब हम बीमा अधिनियम की धारा 39(7) का उल्लेख करेंगे[4] जो इस प्रकार है :— मुद्दा (ञ)—बीमा अधिनियम की धारा 39(7)।

"(7) इस धारा के उपबंध किसी ऐसी जीवन बीमा पालिसी को लागू नहीं होंगे जिसके विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 लागू होती है या किसी समय लागू हुई थी :

परन्तु जहां बीमा (संशोधन) अधिनियम, 1946 के प्रारम्भ के पूर्व या उसके पश्चात्, उस व्यक्ति की जिसने अपने जीवन का बीमा कराया है, पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के पक्ष में किए गए नाम निर्देशन में प्रत्यक्षतः या अन्यथा यह अभिव्यक्त हो कि यह इस धारा के अधीन किया गया है तो उक्त धारा की बाबत यह समझा जाएगा कि वह उस पालिसी को न तो लागू होती है और न लागू हुई थी।"

---

1. धारा 11 मैरिड विमन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंग्लैण्ड) (परिशिष्ट 3)।
2. हरि दासी बनाम कनेडियन इंश्योरेंस कम्पनी, ए० आई० आर० 1937 कलकत्ता 384।
3. पूर्वगामी पैरा 8.50 में मुद्दा (ज) के अधीन चर्चा देखिए।
4. पूर्वगामी पैरा 5.5 भी देखिए।

बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में एक अन्य परन्तुक जोड़ने की सिफारिश ।

8.54. बीमा अधिनियम की धारा 39 (7) का परन्तुक, जो ऊपर उद्धृत किया गया है[1] कुछ मामलों में कठिनाइयाँ पैदा कर सकता है।[2] जहां कोई व्यक्ति गलती से 1874 के अधिनियम के अधीन न्यास सृजित करता है और बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन नामनिर्देशन भी कर देता है, वहां यह प्रश्न उठ सकता है कि इन दोनों में से कौन अभिभावी होगा। स्पष्ट है कि नीति के रूप में, जहां तक पत्नी और बालकों का संबंध है, अधिक फायदाप्रद और प्रभावी होने के कारण न्यास अभिभावी होना चाहिए। ऐसी स्थिति के संबंध में, धारा 39(7) के परन्तुक में अधिनियमित नियम लागू नहीं होना चाहिए और हम इस रिपोर्ट के आगे एक अध्याय[3] में धारा 39(7) के परन्तुक में यथोचित संशोधन करने की सिफारिश कर रहे हैं।

बाद में न्यास का सृजन प्राधिकृत करने के लिए धारा 6 का संशोधन करने की सिफारिश ।

8.55. अब हम धारा 6 के संबंध में अगले मुद्दों पर जाते हैं। जहां बीमाकृत ने अपनी पत्नी और बालकों के पक्ष में न्यास सृजित नहीं किया है, वहां उसे पालिसी के चालू रहने के दौरान, तत्पश्चात् किसी समय ऐसा न्यास सृजित करने की शक्ति होनी चाहिए। इस समय धारा 6 ऐसे किसी बात की अनुज्ञा नहीं देती है किन्तु हमारी राय है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पालिसी जारी होने के पश्चात् परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण बीमाकृत के इस विषय पर पुनर्विचार करना आवश्यक हो सकता है, इस बात की अनुज्ञा दी जानी चाहिए। ऐसी आवश्यकता केवल उस स्थिति में नहीं जिसमें पालिसी के समय बीमाकृत व्यक्ति अविवाहित है बल्कि उस स्थिति में भी जिसमें कि विवाहित होते हुए भी उसने धारा के फायदाप्रद उपबन्धों का लाभ नहीं उठाया है, हो सकती है। हम इसका उपबंध करने की सिफारिश करते हैं।

मुद्दा (ठ)–धारा 6–न्यास का सृजन–समझे जाने संबंधी उपबन्ध के स्थान पर शाब्दिक परिवर्तन की सिफारिश ।

8.56. हम पहले ही देख चुके हैं[4] कि इंगलैण्ड के ऐक्ट ने उसमें नामित उद्देश्यों के पक्ष में न्यास सृजित करेगा। "(shall create a trust in favour of objects therein named)" शब्द आते हैं। ये शब्द न्यास को केवल उस रूप में "समझे जाने" की अपेक्षा, जैसा कि 1874 के अधिनियम की धारा 6 में है, अधिक निश्चायक बनाते हैं। हमारा मत है कि ये शब्द ले लिए जाएं और हम यही सिफारिश करते हैं।

मुद्दा (ड)–लेनदारों के अधिकार संशोधन की सिफारिश ।

8.57. दूसरा मुद्दा लेनदारों के अधिकारों के संबंध में है। हमने देखा है[5] कि धारा 6 के अधीन लेनदारों के कपट के मामले में, ऐसी किसी पालिसी के (सम्पूर्ण) आगम के विरुद्ध अधिकार प्राप्त करने का हक होगा यद्यपि "सम्पूर्ण" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इंगलैण्ड के ऐक्ट के अधीन, लेनदार, पालिसी के अधीन संदेय रकम में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमियम की रकम के बराबर रकम पाने के हकदार हैं। इस प्रकार इंगलैण्ड में लेनदार उस रकम से जो उसे भारत में मिलती कम रकम पाने के हकदार होंगे। हम समझते हैं कि इंगलैण्ड की विधि के उपबंध का अनुसरण किया जाए क्योंकि वह लेनदारों और हिताधिकारियों दोनों के लिए अच्छा है और हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

मुद्दा (ढ)–धारा 6(1)–'उद्देश्य' को निर्दिष्ट करने वाले शब्द–संशोधन की सिफारिश ।

8.58. ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 6(1) में प्रयुक्त शब्द "जब तक कि न्यास का कोई उद्देश्य शेष रहता है" संदिग्धार्थी है। जैसा कि सिंध के एक मामले में[6] बताया गया है इंगलैण्ड के ऐक्ट[7] में प्रयुक्त तत्स्थानी शब्दों पर भी टीका की गई है। हम समझते हैं कि इस संबंध में स्थिति को अधिक निश्चायक रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। आशा है कि हम धारा 6(1) के जिस प्रकार नए प्रारूप की सिफारिश कर रहे हैं, उससे यह कठिनाई दूर हो जाएगी[8]।

हम जिस संशोधन का प्रस्ताव कर रहे हैं उसका एक परिणाम यह होगा कि तत्प्रतिकूल किसी आशय के अधीन रहते हुए, नामित पत्नी को पालिसी में पूर्ण हित मिलेगा जिससे कि यदि वह पति से पूर्व मर जाती है तो वह उसकी सम्पदा का भाग हो जाएगा[9]। इंगलैण्ड में कुछ संविवाद के पश्चात् यह स्थिति स्थापित हुई थी[10]।

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.53।
2. यह मुद्दा पूर्वगामी पैरा 8.42 में चर्चित मुद्दे के अलावा है।
3. आगामी पैरा 15.6।
4. पूर्वगामी पैरा 8.12 मुद्दा (2)।
5. पूर्वगामी पैरा 8.12।
6. मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 की धारा 11 (उपबन्ध 3)।
7. शामदास पैरा 8.47।
8. आगामी पैरा 8.61 देखिए।
9. कजिन्स बनाम सन लाइफ एश्योरेंस सोसायटी (1933) चांसरी 126।
10. सी० किपैट्रिम पालिसी ट्रस्ट (1966) 2 डब्ल्यू० एल० आर० 1346।

किन्तु स्त्री के पती को उसकी (स्त्री की) मृत्यु के पश्चात् उसके (पति के) द्वारा संदाय किए गए प्रीमियम पर धारणाधिकार प्राप्त होगा क्योंकि वे न्यासी द्वारा न्यास सम्पत्ति की परिरक्षा के लिए किए गए संदाय है[1]।

धारा 6(2)—विभिन्न अवधियां।

8.59. इसके साथ ही धारा 6(1) के बारे में हमारी चर्चा समाप्त होती है। धारा 6 की उपधारा (2) उस उपधारा में उल्लिखित कई अवधियों के कारण जटिल प्रतीत हो सकती है किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका एक इतिहास है। यह प्रश्न कि धारा 6 हिन्दू मुसलमान आदि को लागू होती है या नहीं मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष 1913 में आया था और तारीख 1 अप्रैल, 1913[2] को उसने यह निर्णय दिया कि धारा 6 हिन्दू मुसलमान आदि को लागू होती है। यह प्रतीत होता है कि 1923 में विधान मण्डल ने नीति के रूप में यह विनिश्चय किया कि इस धारा का विस्तार हिन्दू मुसलमानों आदि पर किया जाए और वह विनिश्चय करते समय विधान ने यह माना कि मद्रास प्रेसीडेन्सी (जैसी यह उस समय थी) यह स्थिति 1913 से अर्थात् पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय के बाद से ही थी। तदनुसार; जब 1923 में धारा 6(2) का संशोधन किया गया तो यह उपबंध किया गया था कि उपधारा (1) के उपबंध—अर्थात् मूल उपबंध, ऐसी बीमा की पालिसी की दशा में जिसका उसमें उल्लेख किया गया है और जो हिन्दू, मुसलमान आदि द्वारा ली गई हो; विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् लागू होंगे। विनिर्दिष्ट अवधि मद्रास के लिए "31 दिसम्बर, 1913 के पश्चात्" थी और अन्य क्षेत्रों के संबंध में "1 अप्रैल, 1923 के पश्चात्" थी। 1959 में विवाहित स्त्री सम्पत्ति (विस्तारण) अधिनियम, 1959 अधिनियमित किया गया था जो तारीख 1 मार्च, 1960 को प्रवृत्त हुआ और जिसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर किया गया। फलस्वरूप उन राज्य क्षेत्रों के संबंध में जिनमें अधिनियम का विस्तार पहले नहीं था, धारा 6 के प्रवर्तन के लिए अवधि विनिर्दिष्ट करते हुए धारा 6(2) का पुनः संशोधन करने की आवश्यकता हुई। तदनुसार, इस संदर्भ में किसी विनिर्दिष्ट तारीख का उल्लेख करके नहीं बल्कि 1959 के विस्तारण अधिनियम के प्रारम्भ का उल्लेख करने वाले एक सूत्र का उपयोग करके 1959 में इस धारा का संशोधन किया गया। इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में धारा 6 के प्रवर्तन के सन्दर्भ में अब तीन अवधियां तात्विक हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(i) मद्रास के संबंध में, 31 दिसम्बर, 1913 के पश्चात् की अवधि,

(ii) ब्रिटिश भारत के अन्य भागों के संबंध में 1 अप्रैल, 1923 के पश्चात् की अवधि,

(iii) जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष भारत के संबंध में 1 मार्च, 1960 को या उसके पश्चात् की अवधि।

8. इस अध्याय में की गई सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण

इस अध्याय में की गई सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण।

8.60. इस अध्याय में की गई सिफारिशों को हम संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं :

(i) विन्यास पालिसियों को एक स्पष्टीकारक संशोधन के द्वारा धारा 6 के अन्तर्गत लाया जाए[3]।

(ii) बीमाकर्ताओं को चाहिए कि जहां बीमाकृत व्यक्ति का आशय यह हो[4] कि धारा 6 लागू हो वहां वे जीवन बीमा पालिसी में धारा 6 में प्रयुक्त उस सूत्र को अपनाएं। इसके अतिरिक्त, इस प्रयोजन के लिए बीमा अधिनियम में संशोधन किया जाए[4क]।

(iii) बालकों को[5] धारा 6 का फायदा मिलना चाहिए।

(iv) धारा 6 का इस प्रकार विस्तार किया जाए कि उसके अन्तर्गत समाश्रित न्यास[6] भी आ जाए।

(v) जहां कोई व्यक्ति न्यासी नियुक्त नहीं किया गया है वहां पालिसी धारक या उसका वारिस न्यासी[7] होना चाहिए।

---

1. स्मिथस एस्टेट (1937) चान्सरी 636।
2. यालम्बा बनाम कृष्णैया आई० एल० आर० 37 मद्रास 483, ए० आई० आर० 1914 मद्रास 595 (पूर्ण न्यायपीठ)।
3. पूर्वगामी पैरा 8.22।
4. पूर्वगामी पैरा 8.30।
4. क. पूर्वगामी पैरा 8.42।
5. पूर्वगामी पैरा 8.33।
6. पूर्वगामी पैरा 8.46।
7. पूर्वगामी पैरा 8.50।

(vi) जहां बीमा पालिसी के अधीन शोध्य रकम के बारे में, बीमाकृत व्यक्ति ने विवाहित स्त्री संपत्ति अधिनियम, 1974 की धारा 6 के अधीन न्यास सृजित किया है और नामनिर्देशन भी किया है वहां ऐसे नामनिर्देशन की चाहे वह धारा 39 के प्रति निर्देश करता हो या नहीं अवहेलना की जाएगी[1] इस प्रयोजन के लिए बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में दूसरा परन्तुक जोड़कर, उस धारा का संशोधन किया जाना चाहिए।

(vii) जहां किसी व्यक्ति द्वारा ली गई पालिसी में, उस समय जब वह ली जाती है, प्रत्यक्ष रूप से यह अभिव्यक्त नहीं है कि वह उपधारा (1) में उल्लिखित व्यक्ति में से किसी व्यक्ति के फायदे के लिए है वहां बीमाकृत को यह अधिकार भी होना चाहिए कि पालिसी के अस्तित्व में रहने के दौरान, तत्पश्चात् किसी भी समय वह न्यास सृजित कर सके[2]।

(viii) इंगलैण्ड के ऐक्ट में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे हैं :

"उसमें नामित उद्देश्यों के पक्ष में न्यास सृजित करेगा"

ये शब्द न्यास को केवल उस रूप में समझे जाने जैसा कि धारा 6 में है, की अपेक्षा अधिक निश्चायक बनाते हैं। ये शब्द ले लिए जाने चाहिए[3]।

(ix) धारा 6 के अधीन लेनदारों को कपट के मामले में, ऐसी किसी पालिसी के (संपूर्ण) आगम के विरुद्ध अधिकार प्राप्त करने का हक होगा। यद्यपि "सम्पूर्ण" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसकी बजाए लेनदार पालिसी के अधीन शोध्य धन में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमीयम की रकम के बराबर की रकम पाने के हकदार होने चाहिए[4]।

(x) धारा 6(1) में, शब्द "जब तक कि उस न्यास का कोई उद्देश्य शेष रहता है" संदिग्धार्थी हैं। इस अवसर का लाभ उठा कर इस संबंध में स्थिति अधिक निश्चायक रूप से बताई जानी चाहिए। एक नए प्रारूप की सिफारिश की जा रही है[5]।

उस संशोधन का जिसकी सिफारिश की गई है, एक परिणाम यह होगा कि तत्प्रतिकूल किसी आशय के अधीन रहते हुए, नामित पत्नी को पालिसी में पूर्ण हित मिलेगा जिससे कि यदि उसकी मृत्यु उसके पति से पहले हो जाती है, तो वह उसकी सम्पदा का भाग बन जाएगी[5]।

धारा 6(1) का नया प्रारूप।

8.61. उक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 6(1) के स्थान पर, निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएं।

"(1) किसी विवाहित व्यक्ति द्वारा ली गई जीवन बीमा पालिसी जिसमें प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त हो कि वह यह पालिसी उसकी पत्नी, या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए है, उसकी पत्नी या उसके बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए, इस प्रकार अभिव्यक्त हित के अनुसार, **एक न्यास सृजित करेगी** और जब तक कि न्यास के किसी उद्देश्य का **निष्पादन किया जा सकता है और अनिष्पादित रहता है** तब तक उसके अधीन शोध्य रकम बीमाकृत व्यक्ति की सम्पदा का भाग नहीं होगी और न वह उसके ऋणों के अधीन होगी :

इंग्लैण्ड के 1882 के ऐक्ट की धारा 11 देखिए।

परन्तु यदि यह साबित हो जाता है कि बीमाकृत व्यक्ति के लेनदारों को धोखा देने के आशय से पालिसी ली गई थी और **प्रीमियमों का संदाय किया गया था तो उनको (लेनदारों को) पालिसी के अधीन संदेय रकम में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमियमों की रकम के बराबर रकम प्राप्त करने का हक होगा।**

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.54।
2. पूर्वगामी पैरा 8.55।
3. पूर्वगामी पैरा 8.56।
4. पूर्वगामी पैरा 8.57।
5. पूर्वगामी पैरा 8.58।

(vi) जहां बीमा पालिसी के अधीन शोध्य रकम के बारे में, बीमाकृत व्यक्ति ने विवाहित स्त्री संपत्ति अधिनियम, 1974 की धारा 6 के अधीन न्यास सृजित किया है और नामनिर्देशन भी किया है वहां ऐसे नामनिर्देशन की चाहे वह धारा 39 के प्रति निर्देश करता हो या नहीं अवहेलना की जाएगी[1] इस प्रयोजन के लिए बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में दूसरा परन्तुक जोड़कर, उस धारा का संशोधन किया जाना चाहिए।

(vii) जहां किसी व्यक्ति द्वारा ली गई पालिसी में, उस समय जब वह ली जाती है, प्रत्यक्ष रूप से यह अभिव्यक्त नहीं है कि वह उपधारा (1) में उल्लिखित व्यक्ति में से किसी व्यक्ति के फायदे के लिए है वहां बीमाकृत को यह अधिकार भी होना चाहिए कि पालिसी के अस्तित्व में रहने के दौरान, तत्पश्चात् किसी भी समय वह न्यास सृजित कर सके[2]।

(viii) इंगलैण्ड के ऐक्ट में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे हैं :

"उसमें नामित उद्देश्यों के पक्ष में न्यास सृजित करेगा"

ये शब्द न्यास को केवल उस रूप में समझे जाने जैसा कि धारा 6 में है, की अपेक्षा अधिक निश्चायक बनाते हैं। ये शब्द ले लिए जाने चाहिए[3]।

(ix) धारा 6 के अधीन लेनदारों को कपट के मामले में, ऐसी किसी पालिसी के (संपूर्ण) आगम के विरुद्ध अधिकार प्राप्त करने का हक होगा। यद्यपि "सम्पूर्ण" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसकी बजाए लेनदार पालिसी के अधीन शोध्य धन में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमीयम की रकम के बराबर की रकम पाने के हकदार होने चाहिए[4]।

(x) धारा 6(1) में, शब्द "जब तक कि उस न्यास का कोई उद्देश्य शेष रहता है" संदिग्धार्थी हैं। इस अवसर का लाभ उठा कर इस संबंध में स्थिति अधिक निश्चायक रूप से बताई जानी चाहिए। एक नए प्रारूप की सिफारिश की जा रही है[5]।

उस संशोधन का जिसकी सिफारिश की गई है, एक परिणाम यह होगा कि तत्प्रतिकूल किसी आशय के अधीन रहते हुए, नामित पत्नी को पालिसी में पूर्ण हित मिलेगा जिससे कि यदि उसकी मृत्यु उसके पति से पहले हो जाती है, तो वह उसकी सम्पदा का भाग बन जाएगी[5]।

धारा 6(1) का नया प्रारूप।

8.61. उक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 6(1) के स्थान पर, निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएं :

"(1) किसी विवाहित व्यक्ति द्वारा ली गई जीवन बीमा पालिसी जिसमें प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त हो कि वह यह पालिसी उसकी पत्नी, या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए है, उसकी पत्नी या उसके बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए, इस प्रकार अभिव्यक्त हित के अनुसार, **एक न्यास सृजित करेगी** और जब तक कि न्यास के किसी उद्देश्य का **निष्पादन किया जा सकता है और अनिष्पादित रहता है** तब तक उसके अधीन शोध्य रकम बीमाकृत व्यक्ति की सम्पदा का भाग नहीं होगी और न वह उसके ऋणों के अधीन होगी :

इंगलैण्ड के 1882 के ऐक्ट की धारा 11 देखिए।

परन्तु यदि यह साबित हो जाता है कि बीमाकृत व्यक्ति के लेनदारों को धोखा देने के आशय से पालिसी ली गई थी और **प्रीमियमों का संदाय किया गया था तो उनको (लेनदारों को) पालिसी के अधीन संदेय रकम में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमियमों की रकम के बराबर रकम प्राप्त करने का हक होगा।**

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.54।
2. पूर्वगामी पैरा 8.55।
3. पूर्वगामी पैरा 8.56।
4. पूर्वगामी पैरा 8.57।
5. पूर्वगामी पैरा 8.58।

(1क) जहां किसी व्यक्ति द्वारा ली गई बीमा पालिसी में उस समय जब वह ली जाती है प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त नहीं है कि उपधारा (1) में वर्णित व्यक्तियों में से किसी के फायदे के लिये है तो बीमाकृत व्यक्ति उस पालिसी के अस्तित्व में रहने के दौरान[1] किसी भी समय, अपने इस विनिश्चय की सूचना बीमाकर्ता को लिखित रूप में दे सकेगा कि पालिसी उसकी पत्नी या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए होगी, और बीमाकर्ता को ऐसी सूचना मिलने पर, इस धारा के उपबंध यथाशक्य उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस पालिसी को लागू होते हैं जिसको उपधारा (1) लागू होती है।

(1ख) बीमाकृत व्यक्ति पालिसी द्वारा या किसी लापन द्वारा जिस पर उसने हस्ताक्षर किये हों पालिसी के अधीन शोध्य रकम के लिये एक या अधिक न्यासी नियुक्त कर सकेगा और समय-समय पर उसके लिए नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त कर सकेगा, तथा उसके लिए और किसी ऐसी किसी पालिसी के अधीन शोध्य रकम के विनिधान के लिए किसी नए न्यासी या नए न्यासियों की नियुक्ति का उपबंध कर सकेगा।

(1ग) न्यासी को इस प्रकार नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर ऐसी पालिसी, उसके लिए जाते ही बीमाकृत व्यक्ति में और उक्त व्यक्तियों के लिये न्यासतः उसके विधिक प्रतिनिधियों में निहित होगी।

(1घ) यदि, बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु के समय या उसके पश्चात् किसी समय, कोई न्यासी न हो या कोई नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त करना समीचीन हो तो ऐसे किसी न्यायालय द्वारा जो भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के उपबंधों के अधीन अधिकारिता रखता हो, नए न्यासी या नए न्यासियों की नियुक्ति की जा सकेगी।

(1ङ) विधिवत् नियुक्त किए गए न्यासी या न्यासियों की रसीद, या ऐसी किसी नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर अथवा बीमाकर्ता को सूचना देने में व्यतिक्रम होने पर, बीमाकृत व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि की रसीद से बीमाकर्ता पालिसी द्वारा प्रतिभूत रकम के लिए या उसके यथास्थिति, सम्पूर्ण या आंशिक मूल्य के लिए, उन्मोचित हो जाएगा।

(स्पष्टीकरण जोड़ा जाना है)

स्पष्टीकरण 1–इस धारा के प्रयोजनों के लिए विन्यास पालिसी, जीवन बीमा पालिसी है।

स्पष्टीकरण 2–उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रीति में प्रदत्त फायदा समाश्रित हो या नहीं, इस धारा के उपबंध लागू होंगे।

स्पष्टीकरण 3–[इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वर्तमान अधिनियम के अधीन की पालिसियों को भी नई धारा का फायदा मिलना चाहिए।]

---

1. "अस्तित्व" शब्द की बजाए बीमा अधिनियम से कोई दूसरा शब्द लिया जा सकता है, यदि वह अधिक उपयुक्त हो।

अध्याय 9

विधिक कार्यवाहियां

धारा 7 । 9.1. विवाहित स्त्रियों द्वारा और उनके विरुद्ध विधिक कार्यवाहियों की चर्चा धारा 7 में की गई है, जो इस प्रकार है :—

> "7. कोई विवाहित स्त्री किसी भी प्रकार की सम्पत्ति के, जो उक्त भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 या इस अधिनियम के बल पर उसकी पृथक संपत्ति है, प्रत्युद्धरण के लिए अपने नाम से वाद चला सकेगी, और ऐसी सम्पत्ति की संरक्षा और सुरक्षा के लिए सभी व्यक्तियों के विरुद्ध अपने नाम से सिविल एवं दाण्डिक दोनों ही कार्यवाहियां वैसे ही कर सकेगी मानो वह अविवाहित हो, और ऐसी सम्पत्ति की बाबत वह ऐसे वादों, आदेशिकाओं और आदेशों के प्रति वैसे ही दायी होंगी जैसे वह अविवाहित होने पर होती ।"

यह धारा मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1870 (33 और 34 विक्ट० अध्याय 93) का अनुसरण करती है, वह धारा मैरिड विमेन्स प्रोपर्टी ऐक्ट, 1882 (44 और 46 विक्ट० अध्याय 75) द्वारा निरसित हो गई थी ।

शाब्दिक परिवर्तनों की सिफारिश । 9.2. आरम्भ में ऐसे कुछ शाब्दिक परिवर्तनों का उल्लेख करना सुविधाजनक होगा जिनको इस धारा में करने की आवश्यकता है । सबसे पहले बात तो यह है कि उत्तराधिकार अधिनियम, 1865 की धारा के प्रति जो निर्देश किया गया है उसके स्थान पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रति निर्देश होना चाहिए । दूसरे उस परिवर्तित स्कीम को ध्यान रखते हुए, जिसकी सिफारिश हम इस रिपोर्ट में कर रहे हैं "पृथक्" (संपत्ति) का उल्लेख निकाल दिया जाए । इन परिवर्तनों की आवश्यकता तब भी पड़ेगी यदि धारा 7 से धारा 10 तक वर्तमान रूप में बनाए रखी जाती है । किन्तु यह उल्लेखनीय है कि हम 7 से 10 तक की धाराओं के सर्वथा नए प्रारूपों की सिफारिश अलग से कर रहे हैं, [1] और यदि वे नए प्रारूप स्वीकार कर लिए जाते हैं तो ये धाराएं सर्वथा भिन्न रूप में होगी—किन्तु जैसा नीचे बताया गया है उसको छोड़ कर, इसका प्रभाव उनके सारांश पर नहीं पड़ेगा ।

धारा 7 का उत्तरार्ध । 9.3. धारा 7 के उत्तरार्ध[2] से एक कठिन समस्या सामने आती है । यह भाग इन शब्दों के साथ आरम्भ होता है अर्थात् "और ऐसी सम्पत्ति की संरक्षा और सुरक्षा के लिए सभी व्यक्तियों के विरुद्ध अपने नाम से सिविल एवं दाण्डिक दोनों ही कार्यवाहियां वैसे ही कर सकेगी मानो वह अविवाहित है" । इस धारा के इस भाग से अर्थान्वयन की समस्या उत्पन्न होती है ।

क्या यह दायित्वाधीन सम्पत्ति को परिसीमित करता है ? अथवा यह ऐसे वाद, आदेश या आदेशिका को जिसके अधीन विवाहित स्त्री को रखा जाना है, परिसीमित करता है ? सम्भवतः पहला अर्थान्वयन आशयित था किन्तु उस स्थिति में शब्द रचना "ऐसे" शब्द की पुनरावृत्ति न करके आशय अधिक स्पष्ट हो सकता था ।

धारा 7 से संबंधित निर्णयज विधि की, जो उपलब्ध है, जांच की गई है[3-6] । किन्तु इसमें इस बात की विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गई है, क्योंकि यह मुद्दा महत्वपूर्ण नहीं था ।

दायित्व के बारे में धारा 7 को व्यापक बनाने की सिफारिश । 9.4. इस समय इस धारा की जो शब्द रचना है उसका अर्थान्वयन चाहे कुछ भी हो, हमारा यह विचार है कि विवाहित स्त्री को, धारा 7 में चर्चित विषयों के संबंध में, अविवाहित स्त्रियों के समकक्ष ही रखा जाए, और यह कि इस प्रयोजन के लिये इस धारा का पुनरीक्षण किया जाए । यह सच है कि किसी भी स्त्री को कभी भी वाद लाने या उस पर वाद लाए जाने से वर्जित नहीं किया गया है किन्तु यह वांछनीय है कि विधि का कथन व्यापक बनाया जाए । पति-पत्नी के एकत्व के अप्रचलित सिद्धांत को, अभिव्यक्त उपबंध द्वारा समाप्त कर दिया जाए । विवाहित स्त्री को, सभी बातों के संबंध में अविवाहित स्त्री के समकक्ष ही रखा जाए ।

---

1. आगामी अध्याय 14 ।
2. पूर्वगामी पैरा 9.1 ।
3. हेरीस बनाम हेरिस, (1877) आई० एल० आर० 1 कलकत्ता 285 ।
4. अल्लामुही बनाम ग्राहन (1877) आई० एल० आर० 4 कलकत्ता 140 ।
5. मेन्टल का मामला (1895) आई० एल० आर० 18 मद्रास 15 ।
6. मिसेज गाउडीहन बनाम वेंकटेसन (1907) आई० एल० आर० 30 मद्रास 378 ।

इस निष्कर्ष पर पहुंचने में, हम इस विचार से प्रभावित हुए हैं कि कामन ला में विलय की संकल्पना, जिस पर पत्नी के विरुद्ध मुकदमें में पति के संयोजन संबंधी अपेक्षा आधारित हैं, अब अप्रचलित हो गई है। इस अधिनियम ने पति-पत्नी के एकत्व के सिद्धान्त को उपान्तरित कर दिया गया है, किन्तु उस सिद्धान्त का जो कुछ भी अंश बचा हुआ है उसे भी समाप्त कर दिया जाना चाहिये। उक्त परिवर्तन की सिफारिश करने का हमारा मुख्य कारण यही है।

धारा 7 का विस्तार हिन्दू और मुस्लिम स्त्री पर करने की सिफारिश।

9.5. अब हम धारा 7 से संबंधित एक अन्य मुद्दे पर आते हैं। यह स्पष्ट है कि धारा 7 तथा धारा 4 और 5 भी कामन ला की इस संकल्पना के कि विवाहित स्त्री के व्यक्तित्व का, उसका विवाह होने पर, उसके पति के व्यक्तित्व में विलय हो जाता है और इसलिये वह अपनी पृथक् सम्पत्ति के संबंध में भी पति को पक्षकार बनाए बिना न तो वाद ला सकती है और न उस पर वाद लाया जा सकता है। किन्तु धारा 2 के उत्तरार्थ में यह उपबंध है कि ये उपबंध (धारा 4, 5 और 7) धारा 2 में विनिर्दिष्ट कुछ विवाहित स्त्रियों को अर्थात् हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों को लागू नहीं होते।

हमारा यह विचार है कि इस बात के लिये कि भारत में किसी भी विवाहित स्त्री को नियोग्यता लागू नहीं होती कानूनी उपबन्ध इस अधिनियम में, उपयुक्त भाषा में जोड़ दिया जाना चाहिये।

धारा 7 के सिद्धांत का हिन्दू-मुस्लिम आदि पर विस्तार।

9.5क. इसमें कोई संदेह नहीं है कि 1874 के अधिनियम की धारा 2 से यह दर्शित होता है कि हिन्दु और मुस्लिम की बाबत यह माना जाता है कि उनको वैयक्तिक विधि लागू होती हैं, जो पति-पत्नी के विधिक ऐक्य को मान्यता नहीं देती। किन्तु हमारे विचार से, धारा 7 में समाविष्ट सिद्धान्त हिन्दू, मुस्लिम आदि को लागू किया जाए जिससे कि ऐसे तर्कों से बचा जा सके कि इन समुदायों की स्त्रियां एकता के सिद्धान्त (डाक्ट्रिन आफ यूनिटी) के अधीन हैं।

हम समझते हैं कि इस संबंध में, इस अवसर का लाभ उठा कर धारा को व्यापक बनाया जाए।

संक्षेप में--

(क) जहां तक हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों से भिन्न स्त्रियों का संबंध है, हमने जिन संशोधनों की सिफारिश की है उनसे उपबन्ध वर्तमान की अपेक्षा अधिक व्यापक हो जाएगा,

(ख) जहां तक हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों का संबंध है, वे संशोधन जिनकी सिफारिश की गई है, उस स्थिति का, जो अब स्वीकार कर ली गई है, पुनर्कथन, 1974 के अधिनियम के आधार पर नहीं, बल्कि साधारण विधि के आधार पर करेंगे।

इसलिये नए उपबन्धों से विवाहित स्त्रियों को उन मामलों में जो सिविल मुकदमों के बारे में उठाए जा सकते हैं सही विधिक स्थिति के संबंध में सभी शंकाएं दूर की जाएंगी।

अध्याय 10

विवाह के बाद के ऋणों के लिए पत्नी का दायित्व

धारा 8 ।

10.1. विवाह के बाद के ऋणों के लिये पत्नी के दायित्व की चर्चा धारा 8 में की गई है जो इस प्रकार है :—

"8. यदि किसी विवाहित स्त्री की (चाहे वह 1866 की जनवरी के प्रथम दिन से पूर्व विवाहित हो या उसके पश्चात्) कोई पृथक सम्पत्ति है, और यदि कोई व्यक्ति उसके साथ कोई संविदा उस सम्पत्ति के संबंध में या इस विश्वास पर करता है कि ऐसी संविदा से उद्भूत होने वाली उसकी बाध्यता उसकी पृथक सम्पत्ति में से तुष्ट हो जाएगी तो वह व्यक्ति उस पर वाद लाने का, और उसकी पृथक सम्पत्ति को सीमा तक उससे उतना धन वसूल करने का हकदार होगा जितना उसने उस वाद में उस समय वसूल किया होता जब वह संविदा की तारीख को अविवाहित होती और डिक्री के निष्पादन के समय अविवाहित रहती :

परन्तु इसमें की कोई बात,—

(क) किसी ऐसी सम्पत्ति में से, जो किसी स्त्री को या इस शर्त पर उसके फायदे के लिये अन्तरित की गई है कि अपने विवाह के दौरान उसे अथवा उसमें किसी फायदाप्रद हित को अन्तरित अथवा भारित करने की उस स्त्री को कोई शक्ति नहीं होगी, कुर्की और बिक्री द्वारा या अन्यथा कुछ भी वसूल करने का हक उस व्यक्ति को नहीं देगी, अथवा

(ख) अभिव्यक्ततः अथवा विवक्षिततः उसकी पत्नी द्वारा लिये गये ऋणों के लिये पति के दायित्वों को प्रभावित नहीं करेगी ।"

सिफारिश ।

10.2. इस धारा में निम्नलिखित संशोधन करने की आवश्यकता है :—

(i) "सम्पत्ति" शब्द से पहले आने वाले "पृथक" शब्द को हटा दिया जाए[1] ।

(ii) परन्तुक (क), जो प्रत्याशा पर अवरोध से संबंधित है, निकाल दिया जाए[2] ।

हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं ।

धारा 8 परन्तुक निर्णयज विधि ।

10.3. धारा 8 के परन्तुक का पुनरीक्षण 1929 में किया गया था, और इसका इतिहास रोचक है । जब कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 में कुछ समुदायों की विवाहित स्त्रियों के संबंध में अन्यसंक्रामण पर अवरोध की विधिमान्यता को मान्यता दी गई है, इससे पूर्व ऐसा कोई कानूनी उपबन्ध नहीं था जिसमें इस बारे में विधि का अधिकथन किया गया होता कि क्या वह सम्पत्ति जिसकी बाबत अन्यसंक्रामण पर ऐसा अवरोध लगाया गया है विवाहित स्त्री के दायित्वों की तुष्टि में किसी डिक्री के निष्पादन में कुर्क की जा सकती है । इंग्लैंड में यह अभिनिर्धारित किया गया है[3] कि सम्पत्ति कुर्क नहीं की जा सकती है । भारत में इस विषय पर कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध न होने के कारण, कुछ उच्च न्यायालयों ने अर्थात्, कलकत्ता[4] और मुम्बई[5] के उच्च न्यायालयों ने—यह अभिनिर्धारित किया कि विवाहित स्त्री का लेनदार अपने दावे को उस संपत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित करा सकता है जिसका अन्यसंक्रामण करने से विवाहित स्त्री को अवरुद्ध किया गया है । ऐसा करने में इन न्यायालयों ने मुख्यतः मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट की धारा 7 और 8 (जैसी वे तब थीं) पर निर्भर किया । धारा 7 के अधीन विवाहित स्त्री, अपनी पृथक सम्पत्ति के संबंध में वाद ला सकती है या उस पर वाद लाया जा सकता है और धारा 8 के अधीन (जैसी वह तब थी) ऐसा व्यक्ति जो विवाहित स्त्री के साथ उस स्त्री की पृथक् सम्पत्ति के संबंध में कोई संविदा करता है, वाद ला सकेगा और उस सम्पत्ति की सीमा तक वसूली कर सकेगा । इसके विपरीत मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट की ये दो धाराएं अन्यसंक्रामण पर अवरोध के मार्ग में बाधक नहीं हैं क्योंकि उनका प्रवर्तन कुर्की के निवारण के लिये भी किया जाता है । मद्रास उच्च न्यायालय के अनुसार, विधान मण्डल ने ऐसी शर्तों

---

1. आगामी अध्याय 14 भी देखिए ।
2. प्रत्याशा पर अवरोध की बाबत चर्चा के लिए आगामी अध्याय 15 देखिए ।
3. चैपमेन बनाम बिग्स (1883) 11 क्यू० बी० डी० 27 ।
4. हिप्पोलाइट बनाम स्टुअर्ट (1885) आई० एल० आर० 12 कलकत्ता 522 ।
5. करसेटजी बनाम रुस्तम जी (1887) आई० एल० आर० 11 मुम्बई 348 ।

की उपेक्षा करने का आशय दर्शित नहीं किया है। मद्रास उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण दो मामलों[1] में अपनाया था। इस दृष्टिकोण को अपनाते समय, मद्रास उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी निर्भर किया कि विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 के बाद, विधान मण्डल ने, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 में प्रत्याशा पर अवरोध के सिद्धान्त को कानूनी प्रभाव दिया। मद्रास उच्च न्यायालय के अनुसार, प्रत्याशा पर अवरोध को भारत में मान्यता दी गई है और वह भारत में प्रवर्तनीय है तथा इसके प्रवर्तन पर विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 8 का प्रभाव नहीं पड़ता। यदि विवाहित स्त्री की कोई पृथक सम्पत्ति है तो उस स्त्री की संविदाओं के संबंध में उसके विरुद्ध धारा 8 के अनुसार पारित डिक्रियां ऐसी सम्पत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित नहीं की जा सकतीं जिसके लिये उसे अन्यसंक्रामण से अवरुद्ध किया गया है क्योंकि अन्यथा अभिनिर्धारित करने से प्रत्याशा पर अवरोध पूर्ण रूप से अप्रवर्तनीय हो जाएगा। कुर्की प्राधिकृत करने वाले प्रक्रियात्मक नियमों का भी यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि वे ऐसी सम्पत्ति की कुर्की को प्राधिकृत करते हैं जिसे हिताधिकारी, मुख्य विधि के एक नियम के अनुसार जो अब सम्पत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 10 में समाविष्ट है–न तो अंतरित और न धारित कर सकता है। मद्रास के दूसरे मामले[2] में इंग्लैंड के अनेक मामलों का हवाला दिया गया है, किन्तु यहां उनकी चर्चा करना आवश्यक नहीं है। मद्रास उच्च न्यायालय ने जिस मुख्य बात पर विचार किया वह यह थी कि दूसरा कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाने से अवरोध अप्रवर्तनीय हो जाएगा।

10.4. विनिश्चयों में इस अन्तर को ध्यान में रखते हुए, कानून बनाना आवश्यक हो गया। विधानमण्डल ने, 1929 में, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम में संशोधन करते समय मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट की धारा 8 को भी अभिव्यक्त रूप से यह उपबन्ध करके संशोधित कर दिया कि विवाहित स्त्री के विरुद्ध धारा 8 के अधीन पारित डिक्रियों का निष्पादन किसी ऐसी सम्पत्ति की कुर्की या विक्रय द्वारा नहीं किया जा सकता है, जिसका विवाहित स्थिति के दौरान अन्यसंक्रामण करने से वह (स्त्री) अवरुद्ध हो। 1929 का संशोधन।

हमने इस इतिहास की चर्चा 1874 के अधिनियम की धारा 8 और सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 के बीच संबंध दर्शाने के लिये की है। हम यह बता दें कि हम सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 के परन्तुक को निकाल देने की सिफारिश कर रहे हैं।

---

1. मैंटल और मैंटल का मामला (1895) आई० अल० आर० 18 मद्रास 199।
2. गाउडोइन बनाम वेंकटासा मुदाल्ली (1907) आई० एल० आर० 30 मद्रास 377, 380।

अध्याय 11

विवाह के पूर्व के ऋण

धारा 9।

11.1. धारा 9 में उपबन्ध है कि पति-पत्नी के विवाह के पूर्व के ऋणों के लिये दायी नहीं है। धारा 9 इस प्रकार है :—

"9. विवाह के पूर्व के पत्नी के ऋणों के लिये पति दायी न होना—1865 के दिसम्बर के इकत्तीसवें दिन के पश्चात् विवाह हो गया है, विवाह के पूर्व अपनी पत्नी द्वारा लिये गये ऋणों के लिये दायी नहीं होगा, किन्तु पत्नी के विरुद्ध वाद लाया जा सकेगा और वह ऐसे ऋणों को चुकाने के लिये अपनी पृथक सम्पत्ति की सीमा तक वैसे ही दायी होगी मानो वह अविवाहित रही होती :

परन्तु इस धारा की कोई बात किसी ऐसी संविदा को अविधिमान्य नहीं करेगी जो पति ने इस अधिनियम के पारित होने से पूर्व अपनी पत्नी के विवाह के पूर्व के ऋणों के प्रतिफल स्वरूप की हो।"

इस धारा में अभिव्यक्ति "पृथक्" को निकाल दिया जाना चाहिये और हम तदनुसार सिफारिश करते हैं[1] हम यह भी सिफारिश कर रहे हैं कि 7 से 10 तक की धाराओं का नया प्रारूप तैयार किया जाए।

---

1. आगामी अध्याय 14 भी देखिए।

अध्याय 12

पत्नी द्वारा न्यास-भंग या सम्पदा क्षय के लिए पति का दायित्व

12.1. पति और पत्नी की एकता की कल्पना के कारण अनेक नियम बने और इन नियमों में से एक नियम का सम्बन्ध पत्नी द्वारा किए गए सदोष कार्यों के लिए पति के दायित्व के क्षेत्र से सम्बन्धित था। ऐसे (सिविल) सदोष कार्यों का एक स्वरूप न्यास भंग या उच्छंश है। यह आवश्यक समझा गया कि ऐसे दायित्व की विनिर्दिष्ट रूप से चर्चा धारा 10 में की जाए। धारा 10 इस प्रकार है :— धारा 10।

> "जहां कोई स्त्री, अपने विवाह से पूर्व या उसके पश्चात्, कोई न्यासी, निष्पादक अथवा प्रशासक है वहां उसका पति, जब तक कि वह न्यास अथवा प्रशासन के सम्बन्ध में कार्य न करता हो या दखलंदाजी न करता हो, उस स्त्री द्वारा किए गए किसी न्यास–भंग, अथवा उसके द्वारा मृतक की सम्पदा को पारित या किए गए किसी करूपयोजन, हानि या नुकसान के लिए, अथवा मृतक की सम्पत्ति के किसी भाग को प्राप्त करने में उस स्त्री की उपेक्षा से उस सम्पदा को हुई किसी हानि के लिए दायी नहीं होगा।"

एक अर्थ में, यह धारा इस नियम का निराकरण करती है कि पत्नी के अपकार्यों के लिए पति दायी है।

12.2. इस धारा के सिद्धान्त में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हम इस अधिनियम की धारा 7 से 10 तक की पुनर्रचना की सिफारिश कर रहे हैं,[1] जिससे इस धारा को उसके वर्तमान रूप में बनाए रखना अनावश्यक होगा। सिफारिश।

---

1. आगामी पैरा 14।

अध्याय 13

अन्य विषय

पति पत्नी के बीच वाद, पत्नी का तीसरे पक्षकार के प्रति दायित्व और पति का उसकी पत्नी के से तीन का अपकृत्यों के लिए दायित्व।

13. 1. उन प्रश्नों के अतिरिक्त जो 1874 के अधिनियम के उपबन्धों से उत्पन्न होते हैं, कुछ ऐसे अन्य विषय भी हैं जिनका विवाह के साम्पत्तिक पहलू से परोक्ष रूप से सम्बन्ध है। हम अपनी चर्चा को व्यापक बनाने की दृष्टि से उनमें से तीन का उल्लेख करेंगे। यद्यपि इस रिपोर्ट में, उन सभी विषयों पर विधि में संशोधन की सिफारिश करना साध्य नहीं होगा।

(1) दम्पत्तियों के बीच में वाद

इंगलैण्ड में, कानून में अब यह उपबन्ध है कि विवाह के प्रत्येक पक्षकार को अपकृत्य के मामले में दूसरे पक्षकार के विरुद्ध कार्यवाही करने का वैसा ही अधिकार है मानो पक्षकार विवाहित न हों[1]। इस सम्बन्ध में एक निर्बन्धन है, अर्थात् जब विवाह के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध विवाहित स्थिति के दौरान, अपकृत्य के लिए कोई कार्यवाही की जाती है तो न्यायालय निम्नलिखित स्थिति में वाद रोक सकता है,[2] अर्थात्--

(क) यदि यह प्रतीत होता है कि कार्यवाहियों के जारी रहने से किसी भी पक्षकार को कोई सारवान फायदा (Substantial benefit)[2] नहीं होगा, या

(ख) यदि प्रश्न का निपटारा मैरिड विमेन्स प्रोपर्टी ऐक्ट, 1882 की धारा 17 के अधीन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

इस विषय पर हम कोई सिफारिश नहीं करना चाहते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध विवाहित स्त्री की सम्पत्ति से नहीं है।

(2) तीसरे व्यक्ति के प्रति पत्नी का दायित्व

इगलैण्ड में लॉ रिफोर्म ऐक्ट, 1935[3] के अधीन विवाहित स्त्री पर उसके अपकृत्यों के लिए वाद लाया जा सकता है और वह सभी प्रकार से शोधन अक्षमता सम्बन्धी विधि और निर्णयों और आदेशों के प्रवर्तन के अधीन है मानो वह अविवाहित स्त्री हो। उस अधिनियम से पूर्व स्थिति इस प्रकार थी :

(i) उसके विरुद्ध वसूल की गई नुकसानी का उद्ग्रहण केवल उसको उस पृथक् सम्पत्ति में से किया जाता था जो प्रत्याशी से अवरुद्ध न हो, और

(ii) उसको तब तक दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता था जब तक कि वह पृथक् व्यापार न करती हो।

हम इस धारा के अपनाए जाने की सिफारिश[4] एक अन्य अध्याय में कर रहे हैं क्योंकि हम इस उपबन्ध को आधुनिक विचारों के अनुकूल पाते हैं।

---

1. धारा 1, लॉ रिफार्म्स (हस्बैंड एण्ड वाईफ) ऐक्ट, 1962 (परिशिष्ट 6)।

2. "Substantial" के अर्थ के लिए 241 हाउस ऑफ लार्डस डिबेट्स, फिफ्थ सीरीज कालम 1104 देखिए।

3. लॉ रिफार्म (मैरिड विमेन्स एण्ड टार्ट फीजर्स) ऐक्ट, 1935 की धारा 1 (परिशिष्ट 4)।

4. आगामी अध्याय 14।

(3) पति का पत्नी के अपकृत्यों के लिए दायित्व

1935 के लॉ रिफोर्म ऐक्ट[1] द्वारा किया गया अन्य परिवर्तन भी उल्लेखनीय है। कॉमन लॉ में, विवाह के दौरान पति, अपनी पत्नी द्वारा किए गए अपकृत्यों के लिए सभी अनुयोजनों में संयोजित किए जाने के लिए दायी था।

हाऊस ऑफ लार्ड्स ने यह विनिश्चय किया कि 1882 के ऐक्ट द्वारा यह दायित्व समाप्त नहीं किया गया था। अब 1882 के ऐक्ट ने पत्नी की सम्पत्ति में पति के हित को समाप्त कर दिया है, किन्तु वह पत्नी के अपकृत्यों के लिए अभी भी दायी है। यह अनुचित था। उदाहरणार्थ न्यूटन बनाम हार्डी[2] के मामले में एक स्त्री वादी ने प्रतिवादी से, प्रतिवादी की पत्नी द्वारा वादी के पति के फुसलाए जाने के लिए नुकसानी वसूल की थी। 1935 के ऐक्ट ने इस अन्याय का उपचार कर दिया[3]।

इस उपबन्ध को अपनाने की सिफारिश हम अलग से एक अन्य अध्याय[4] में कर रहे हैं क्योंकि हम इसे तर्कसंगत और आधुनिक विचारों के अनुकूल पाते हैं।

---

1. लॉ रिफार्म (मैरिड विमेन्स एण्ड टार्ट फीजर्स) ऐक्ट, 1935 की धारा 1 (परिशिष्ट 4)।
2. न्यूटन बनाम हार्डी, (1963) 149 एल० टी० 165।
3. लॉ रिफार्म आदि ऐक्ट, 1935 की धारा 3।
4. आगामी अध्याय 14।

अध्याय 14

1874 के अधिनियम की कुछ धाराओं के सरलीकरण के रूप में सिफारिश किए गए संशोधन

धारा 4 और धारा 7 से 10 तक के बारे में सिफारिशें।

14. 1. पिछले अध्यायों में हमने अधिनियम के संशोधन के लिए कुछ विशिष्ट सिफारिशें की हैं। प्रत्येक अध्याय में जिन विनिर्दिष्ट संशोधनों की सिफारिश की गई है उनके अतिरिक्त हम यहां यह बता देना चाहते हैं कि अधिनियम की कुछ ऐसी धाराओं के, जिनके बारे में हमने 'पृथक्' शब्द हटाने का सुझाव दिया था, प्रारूप में सुधार किया जा सकता है और उसे सरल बनाया जा सकता है और हमें इस अवसर का लाभ उठा कर उन्हें सरल बनाना चाहिए। हम सिफारिश करते हैं कि वर्तमान धाराओं 7 से 10 तक के स्थान पर निम्नलिखित नई धाराएं प्रतिस्थापित की जानी चाहिएं। परिणामस्वरूप धारा 4 और 5 निकाली जा सकती हैं।

अतः हमारी सिफारिशें इस प्रकार हैं :—

वर्तमान धारा 4 और 5

पुनरीक्षित धाराओं 7 से 10 तक को, जिनकी सिफारिश आगे की गई है, ध्यान में रखते हुए वर्तमान धारा 4 और 5 निकाल दी जानी चाहिए।

पुनरीक्षित धाराएं 7 से 10 तक

विवाहित स्त्री की हैसियत (देखिए 1935 के इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 1)।

7. धारा 10 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए विवाहित स्त्री सभी प्रकार से :—

(क) किसी सम्पत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन कर सकेगी ;

(ख) किसी अपकृत्य, संविदा, ऋण या बाध्यता के बारे में स्वयं को दायी बना सकेगी और दायी हो सकेगी ;

(ग) अपकृत्य या संविदा या अन्यथा के सम्बन्ध में वाद ला सकेगी या उस पर वाद लाया जा सकेगा ; और

(घ) दिवाला से सम्बन्धित विधि के और निर्णयों तथा आदेशों के अधीन होगी ;

मानों वह अविवाहित स्त्री (फेमी सोल) हो।

विवाहित स्त्रियों की सम्पत्ति (देखिए 1935 के इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 2)।

8. धारा 10 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए सभी सम्पत्ति जो :—

(क) इस अधिनियम के पारित होने के ठीक पूर्व किसी विवाहित स्त्री की पृथक् सम्पत्ति थी या सान्या में उसके पृथक् उपयोग के लिए धारित थी ; या

(ख) इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री के विवाह के समय उसकी थी ; या

(ग) इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा अर्जित की गई है या उसे न्यागत हुई है ;

सभी प्रकार से उसकी होगी मानो वह अविवाहित स्त्री हो और उस सम्पत्ति का तदनुसार व्ययन किया जा सकेगा।

पत्नी के अपकृत्य और विवाह के पूर्व की संविदाओं, ऋणों और बाध्यताओं के लिए पति के दायित्व का समाप्त किया जाना (देखिए 1935 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 3)।

9. धारा 10 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी विवाहित स्त्री का पति, केवल इस कारण कि वह उस स्त्री का पति है,—

(क) उस स्त्री द्वारा विवाह के पूर्व या बाद किए गए किसी अपकृत्य की बाबत या विवाह के पूर्व उसके द्वारा की गई किसी संविदा या लिए गए ऋण या बाध्यता की बाबत ; या

(ख) ऐसे किसी अपकृत्य, ऋण या बाध्यता की बाबत की गई किसी विधिक कार्यवाही की बाबत दावा किए जाने या पक्षकार बनाए जाने का,

दायी नहीं होगा ।

10. (1) धारा 7 से धारा 9 तक की कोई बात—

(क) पति आश्रय (कोवर्चर) के दौरान जो.....के व्यावृतियां ।
.....वे दिन[1] के पूर्व आरम्भ हुआ है, ऐसी सम्पत्ति को छोड़कर जो साम्या में उसके पृथक् उपयोग के लिए धारित है, किसी सम्पत्ति को जिस पर किसी विवाहित स्त्री का हक (चाहे वह निहित या समाश्रित हो तथा चाहे वह कब्जे, उत्तरभोग या शेष भोग में हो) उस तारीख के पूर्व प्रोद्भूत हुआ है, प्रभावित नहीं करेगी ;

(ख) किसी अपकृत्य के सम्बन्ध में किसी विधि कार्यवाही को तब प्रभावित नहीं करेगी जब कि उसके सम्बन्ध में कार्यवाही इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संस्थित की गई हो ;

(ग) इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व की गई संविदा अथवा उपगत ऋण या बाध्यता के सम्बन्ध में किसी विवाहित स्त्री के विरुद्ध किसी निर्णय या आदेश को दिवाला या अन्यथा उसकी सम्पत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किए जाने के लिए समर्थ नहीं बनाएगी ।

(2) शंकाओं के परिवर्जन के लिए यह घोषणा की जाती है कि धारा 7 से धारा 9 तक की कोई बात—

(क) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसी संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता के लिए उसके पति को दायी नहीं बनाए जिसकी बाबत वह तब तक दायी नहीं होता यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता ;

(ख) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसी संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता की बाबत दायित्व से (जो किसी अपकृत्य के करने से उत्पन्न ऋण या बाध्यता नहीं है) उसके पति को मुक्त नहीं करेगी जिसकी बाबत वह तब दायी होता यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता ;

(ग) पति और पत्नी को संयुक्त रूप से या सामान्यिक अभिधारी के रूप में किसी सम्पत्ति के अर्जन, धारण या व्ययन से या किसी अपकृत्य संविदा, ऋण या बाध्यता के सम्बन्ध में संयुक्त रूप से स्वयं को दायी बनाने या बनाए जाने से और इसी रीति से अपकृत्य या संविदा में या अन्यथा वाद लाने या अपने विरुद्ध वाद लाए जाने से निवारित नहीं करेगी मानो वे विवाहित नहीं हैं ;

(घ) पति और पत्नी को दी गई संयुक्त शक्ति का प्रयोग करने से निवारित नहीं करेगी ।

---

1. विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 के प्रारम्भ होने की तारीख ।

अध्याय 15

अन्य अधिनियमों में संशोधन

1. प्रस्तावना

प्रस्तावना।

15.1. इस अध्याय में हम उन संशोधनों की संक्षेप में चर्चा करेंगे जो इस रिपोर्ट में हमारी सिफारिशों के परिणामस्वरूप 1874 के अधिनियम से भिन्न अधिनियमों में अपेक्षित हैं। जिन अधिनियमों पर विचार किया जाना है, वे ये हैं :—

(1) सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882

(2) भारतीय न्यास अधिनियम, 1882

(3) बीमा अधिनियम, 1938

(4) भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925

अंतिम उल्लिखित अधिनियम में हम किसी संशोधन की सिफारिश नहीं कर रहे हैं, किन्तु हम संक्षेप रूप से इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि कोई परिवर्तन आवश्यक है या नहीं।

2. सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 10।

15.2. हमने इसके पूर्व[1] सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 10 के परन्तुक के प्रति निर्देश किया था जिसके अधीन सम्पत्ति किसी विवाहित स्त्री को जो हिन्दू, मुसलमान या बौद्ध न हो, इस शर्त के साथ अंतरित हो सकेगी कि विवाहित स्थिति के दौरान वह उसका अन्य संक्रामण करने से पूर्णतः अवरुद्ध होगी। यह परन्तुक धारा 10 द्वारा अपने मुख्य पैरा में अधिनियमित उस सामान्य नियम के अल्पीकरण में है जो अन्य संक्रामण पर पूर्ण अवरोध का लगाया जाना प्रतिषिद्ध करता है। हमारी राय में यह परन्तुक देश में बढ़ती हुई सामाजिक जागृति को ध्यान में रखते हुए उचित नहीं है। ईसाई और पारसी, जिनको यह परन्तुक मुख्य रूप से लागू होता है, अन्य लोगों से कम शिक्षित नहीं है। अन्य समुदायों के लिए ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। इस परन्तुक का संबंध विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम की धारा 8 से है। हमारी नई स्कीम में इसका निकाला जाना अपरिहार्य है।

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 का संशोधन करने की सिफारिश।

15.3. वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों और उक्त बातों[2] पर ध्यान देने के पश्चात् हमारा यह विचार है कि सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 10 में अन्य संक्रामण पर अवरोध से संबंधित परन्तुक को अब हटा दिया जाना चाहिए और हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

3. भारतीय न्यास अधिनियम, 1882

न्यास अधिनियम में उपबंध—संशोधन की सिफारिश।

15.4. अन्य संक्रामण पर अवरोध से संबंधित उपबंध न्यास अधिनियम में भी आते हैं इसके पूर्व के एक अध्याय[3] में हमने भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 56 और 58 के संशोधन की सिफारिश की है।

हम सिफारिश करते हैं कि न्यास अधिनियम की धारा 56 का अंतिम पैरा और उस अधिनियम की धारा 56 का परन्तुक निकाल दिया जाए।

पुनरीक्षित धाराओं का पाठ इस प्रकार होगा :

भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की पुनरीक्षित धाराएं 56 और 58

विनिर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार।

"56. हिताधिकारी न्यासकर्ता के आशय का अपने हित के विस्तार तक विनिर्दिष्ट निष्पादन कराने का हकदार है,

कब्जे के अन्तरण का अधिकार।

और जहां केवल एक हिताधिकारी है और वह संविदा करने के लिए सक्षम है या जहां कि कई हिताधिकारी हैं और वे संविदा करने के लिए सक्षम है और एकमत हैं वहां वह या वे न्यासी से अपेक्षा कर सकेगा या कर सकेंगे कि न्यासी न्यास

---

1. पूर्वगामी पैरा 5.7।
2. पूर्वगामी पैरा 15.2।
3. पूर्वगामी पैरा 5.12।

संपत्ति का अन्तरण ऐसे हिताधिकारी या हिताधिकारियों को या ऐसे व्यक्ति को, जिसे वह या वे निर्दिष्ट करे या करें, कर दे।" (धारा 56 का अंतिम पैरा निकाल दिया जाए) (दृष्टान्त वही रहेंगे जो इस समय हैं)

"58. हिताधिकारी, यदि वह संविदा करने के लिए सक्षम है अपने हित का अंतरण कर सकेगा किन्तु तत्समय प्रवृत्त उस विधि के अधीन रहते हुए ही वह ऐसा कर सकेगा जो उन परिस्थितियों और उस विस्तार के बारे में हो जिनमें और जिस तक वह ऐसे हित का व्ययन कर सकता है।" फायदाप्रद हित के अन्तरण का अधिकार।

(परन्तुक निकाल दिया जाए)

4. बीमा अधिनियम, 1938

15.5. धारा 6 के संबंध में इस रिपोर्ट[1] में चर्चित कुछ मुद्दों को ध्यान में रखते हुए बीमा अधिनियम, 1938 में कुछ परिवर्तन अपेक्षित हैं। पहला मुद्दा इस अधिनियम की धारा 39(7) से संबंधित है। यह धारा इस प्रकार है : बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39(7)।

"(7) इस धारा के उपबंध किसी ऐसी जीवन बीमा पालिसी को लागू नहीं होंगे जिसको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 लागू होती है या किसी समय लागू हुई थी :

परन्तु जहां बीमा (संशोधन) अधिनियम, 1946 के प्रारम्भ के पूर्व या उसके पश्चात्, उस व्यक्ति की जिसने अपना जीवन का बीमा कराया है, पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के पक्ष के किए गए नामनिर्देशन में प्रत्यक्षतः या अन्यथा यह अभिव्यक्त हो कि वह इस धारा के अधीन किया गया है तो उक्त धारा की बाबत यह समझा जाएगा कि उस पालिसी को न तो लागू होती है और न लागू हुई थी।"

15.6. बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के उक्त परन्तुक[2] से जो मुद्दा उत्पन्न होता है वह इस प्रकार है : नाम-निर्देशन और न्यास।

वह व्यक्ति जो धारा 6 के अधीन किसी न्यास के सृजन का विनिश्चय करता है, विधि को गलत समझने के कारण या भूल से या अनभिज्ञता के कारण पालिसी में नामनिर्देशन भी कर सकता है। ऐसी दशा में धारा 6 के अधीन न्यास अभिभावी होना चाहिए न कि नाम-निर्देशन। किन्तु धारा 39(7) के वर्तमान परन्तुक के अनुसार यह समझना संभव है कि नाम-निर्देशन न्यास पर अध्यारोही होता है। हमारी राय में यह वांछनीय होगा कि ऐसी स्थिति पैदा ही न होने दी जाए और इसलिए इस मुद्दे पर, हमारी राय में, बीमा अधिनियम की धारा 39(7) के परन्तुक का संशोधन करना वांछनीय है[3]।

हमारा यह भी विचार है कि पालिसी में एक विशेष टिप्पण अन्तःस्थापित करना वांछनीय होगा जिसमें बीमाकृत व्यक्ति को यह बताया जाए कि यदि वह धारा 6 के अधीन किसी न्यास का सृजन करता है तो वह बीमा अधिनियम की धारा 39 के अधीन नाम-निर्देशन नहीं करेगा। हम इस मुद्दे पर बीमा अधिनियम की एक नई धारा 39क के रूप में[4] जिसकी हम सिफारिश कर रहे हैं एक उपयुक्त उपबंध का प्रस्ताव कर रहे हैं।

ऊपर हमने जिन मुद्दों की चर्चा की है उनके अतिरिक्त, बीमा अधिनियम की धारा 39(7) में एक अन्य परिवर्तन करना पड़ेगा जिससे कि उसमें 'बालकों' को भी सम्मिलित किया जा सके। यह परिवर्तन 1874 के अधिनियम की धारा 6 की परिधि का विस्तार करने के लिए हमारी सिफारिश के परिणाम स्वरूप है जिससे कि बालकों के लिए भी न्यास प्राधिकृत किया जा सके।

उक्त प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिए हम सिफारिश करते हैं कि बीमा अधिनियम की धारा 39 की उपधारा (7) को अब निम्नलिखित रूप में पुनरीक्षित किया जाना चाहिए, अर्थात् :—

"(7) इस धारा के उपबंध किसी ऐसी जीवन बीमा पालिसी को लागू नहीं होंगे जिसको विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 लागू होती है या किसी समय लागू हुई है :

परन्तु जहां बीमा (संशोधन) अधिनियम, 1946 के प्रारम्भ के पूर्व या उसके पश्चात् उस व्यक्ति की जिसने अपने जीवन का बीमा कराया है, पत्नी या उसकी पत्नी और बालकों या उसके बालकों या

---

1. पूर्वगामी अध्याय 8।
2. पूर्वगामी पैरा 15.5।
3. पूर्वगामी पैरा 8.54 भी देखिए।
4. आगामी पैरा 15.7 देखिए।

उनमें से किसी के पक्ष में किए गए नामनिर्देशन में प्रत्यक्षतः या अन्यथा यह अभिव्यक्त हो कि वह इस धारा के अधीन किया गया है तो उक्त धारा की बाबत यह समझा जाएगा कि वह उस पालिसी को न तो लागू होती है और न लागू हुई थी।"

"परन्तु जहां, बीमा की किसी पालिसी के अधीन शोध्य धन की बाबत बीमाकृत व्यक्ति ने विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 के अधीन कोई न्यास सृजित किया है और नाम-निर्देशन भी किया है वहां वह नामनिर्देशन की चाहे उसमें इस धारा के प्रति निर्देश हो या नहीं अवहेलना की जाएगी।"

बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39क (अन्तःस्थापित की जाने वाली नई धारा)।

15.7. यह तो रही बीमा अधिनियम की धारा 39(7) से संबंधित बात। उस अधिनियम में एक अन्य संशोधन भी आवश्यक है। 1874 के अधिनियम की धारा 6 की चर्चा करते समय हमने[1] यह कथन किए जाने के संबंध में कि बीमाकृत व्यक्ति 1874 के अधिनियम की धारा 6 का लाभ स्वयं उठाना चाहता है या नहीं, जीवन बीमा पालिसियों के बारे में बीमा अधिनियम में एक विनिर्दिष्ट उपबंध अंतःस्थापित करने की आवश्यकता का उल्लेख किया था। तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि बीमा अधिनियम, 1938 में एक उपबंध जिसे धारा 39क कहा जा सकता है निम्नलिखित रूप में जोड़ा जाना चाहिए :—

बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 39क
(जोड़ी जाए)

"39 क. (1) जीवन बीमा की प्रत्येक पालिसी में :—

(क) एक स्तम्भ या पैरा होगा जिसमें यह कथन किया जा सकेगा कि क्या बीमाकृत व्यक्ति ने विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 के उपबंधों का स्वयं फायदा उठाने का विनिश्चय किया है, और

(ख) यदि बीमाकृत व्यक्ति ने इस विषय में अपने विनिश्चय की सूचना बीमाकर्ता को दे दी है तो उसमें निम्नलिखित कथन होगा :—

"यह पालिसी.....के फायदे के लिए है और विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित व्यक्ति न्यासी हैं, और

(ग) यदि बीमाकृत व्यक्ति ने बीमाकर्ता को उक्त धारा 6 का फायदा स्वयं उठाने के अपने विनिश्चय की सूचना नहीं दी है तो उसमें इस आशय का कथन होगा।

(2) उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट स्तम्भ या पैरा के साथ एक पाद-टिप्पण संलग्न होगा जिसम इस बात का उल्लेख होगा कि जहां बीमाकृत व्यक्ति, उपधारा (1) के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट कथन करके उक्त स्तम्भ में प्रविष्टि करता है वहां वह धारा 39 के अधीन नामनिर्देशन नहीं करेगा।"

5. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925

उत्तराधिकार अधिनियम।

15.8. अब हम इस प्रश्न पर चर्चा करेंगे कि क्या भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता है। 1874 के अधिनियम के संबंध में हमारी सिफारिशों से उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 20, 21 और 22 के संबंध में कुछ प्रश्न उठते हैं। (ये सभी धाराएं व्यावहारिक रूप से, गैर-हिन्दी और गैर-मुसलमान तक ही सीमित हैं)। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मुद्दे हो सकते हैं।

(क) सिद्धान्त रूप में, विवाहित स्त्रियों को सम्पत्ति से सम्बन्धित प्रस्तावित व्यापक उपबंधों को ध्यान में रखते हुए धारा 20 को निरसित किया जा सकता है, किन्तु धारा 20 में जिस विषय की चर्चा है उसी विषय की चर्चा धारा 21 में भी है। (आगे देखिए)

(ख) धारा 21 के निरसन या अन्तरण से कुछ कठिनाइयां पैदा होती हैं, क्योंकि :—

(i) धारा 22 में स्वयं इस धारा के प्रति निर्देश किया गया है और वह धारा विवाह व्यवस्थापन के बारे में है जो एक भिन्न विषय है, और

---

1. पूर्वगामी पैरा 8.42।

(ii) धारा 21 में प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक नियम है जो उत्तराधिकार अधिनियम में अधिक उपयुक्त है ।

(ग) धारा 22 विवाह व्यवस्थापन के संबंध में है जो इस रिपोर्ट की परिधि के बाहर का विषय है।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, हम उत्तराधिकार अधिनियम को इन धाराओं में किसी प्रकार के परिवर्तन का प्रस्ताव नहीं कर रहे हैं और हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इनका निरसन या संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है । उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 20 और प्रतिस्थापित अधिनियम (जो 1874 के अधिनियम को प्रस्थापित करने वाला है) की नई धारा 2 के बीच यदि कोई अतिव्याप्ति है तो वह बहुत मामूली सी है।

आयोग के सदस्य सचिव, श्री बक्षी से हमें इस रिपोर्ट को तैयार करने में जो मूल्यवान सहायता मिली है, हम उसकी हार्दिक सराहना करना चाहते हैं ।

पी० वी० गजेन्द्रगडकर	अध्यक्ष
पी० के० त्रिपाठी	सदस्य
एस० एस० धवन	सदस्य
पी० सेन-वर्मा	सदस्य
बी० सी० मित्र	सदस्य
पी० एम० बक्षी	सदस्य-सचिव

नई दिल्ली
12 मई, 1976

परिशिष्ट 1

विवाहित स्त्री (सम्पत्ति और प्रकीर्ण उपबन्ध) विधेयक, 1976

विवाहित स्त्रियों से सम्बन्धित विधि को घोषित और संशोधित करने के लिए तथा अन्य प्रयोजनों के लिए विधेयक ।

ऐसी विवाहित स्त्रियों को जो हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म[1] को नहीं मानती हैं, सम्पत्ति, अधिकारों और दायित्वों से सम्बन्धित विधि को संशोधित करना वांछनीय है ;

और ऐसी विवाहित स्त्रियों की बाबत जो हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म को मानती हैं, वादों और अन्य विधिक कार्यवाहियों से संबंधित विधि को स्पष्ट करना वांछनीय है ;

और विवाहित स्त्रियों की बाबत जीवन बीमा पालिसियों से सम्बन्धित विधि पुनर्कथन वांछनीय है ;

अतः भारतीय गणराज्य के.....वर्ष में[2] संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

संक्षिप्त नाम और विस्तार ।

1. (1) इस अधिनियम का नाम विवाहित स्त्री (सम्पत्ति और प्रकीर्ण उपबन्ध) अधिनियम, 1976 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय, सम्पूर्ण भारत पर है ।

विवाहित स्त्रियों की क्षमता (देखिए इंग्लैण्ड के 1935 के ऐक्ट की धारा 1) ।

2. धारा 5 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए विवाहित स्त्री सभी प्रकार से[3]—

(क) किसी सम्पत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन कर सकेगी,

(ख) किसी अपकृत्य, संविदा, ऋण या बाध्यता की बाबत स्वयं को दायी बना सकेगी और दायी बनाई जा सकेगी ;

(ग) अपकृत्य में या संविदा में या अन्यथा वाद ला सकेगी या उस पर वाद लाया जा सकेगा ; और

(घ) दिवाला संबंधी विधि तथा निर्णयों और आदेशों के प्रवर्तन के अधीन होगी,

मानो वह अविवाहित हो ।

विवाहित स्त्रियों की संपत्ति (देखिए इंग्लैंड के 1935 के ऐक्ट की धारा 2) ।

3. धारा 5 के उपबंधों के अधीन रहते हुए ऐसी सब सम्पत्ति जो—

(क) .....के.....दिन[4] के ठीक पूर्व किसी विवाहित स्त्री की पृथक् सम्पत्ति थी या उसके पृथक् उपयोग के लिये सम्या में धारित थी; या

(ख) उसके विवाह के समय ऐसी स्त्री की है जिसका विवाह उक्त तारीख के पश्चात् हुआ है ; या

(ग) उक्त तारीख के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा अर्जित की गई है या उसको न्यागत हुई है,

हर प्रकार से उसकी होगी मानो वह अविवाहित हो और तद्नुसार उसका व्ययन किया जा सकेगा ।

पत्नी के अपकृत्य और विवाह के पूर्व की संविदाओं, ऋणों और बाध्यताओं के लिए पति के दायित्व का समाप्त किया जाना (देखिए इंग्लैंड के 1935 के ऐक्ट की धारा 3) ।

4. धारा 5 के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, किसी विवाहित स्त्री का पति, केवल इस कारण कि वह उस स्त्री का पति है,—

(क) उस स्त्री द्वारा विवाह के पूर्व या बाद किये गये किसी अपकृत्य की बाबत या विवाह के पूर्व उसके द्वारा की गई किसी संविदा या लिये गए ऋण या बाध्यता की बाबत; या

---

1. "जैन" शब्द के विषय में संविधान के अनुच्छेद 25 का स्पष्टीकरण 2 देखिए ।

2. यहां पर अधिनियम का वह सूत्र उपयोग में लाया जाए जो प्रायः उपयोग में लाया जाता है ।

3 जहां तक विगत मामलों का सम्बन्ध है 1878 का वर्तमान अधिनियम लागू होगा, साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 की धारा 6 देखिए ।

4. 1976 के नए अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख ।

(ख) ऐसे किसी अपकृत्य, ऋण या बाध्यता की बाबत की गई किसी विधिक कार्यवाही की बाबत दावा किये जाने या पक्षकार बनाए जाने का,

दायी नहीं होगा ।

5. शंकाओं के परिवर्तन के लिये घोषित किया जाता है कि धारा 2 से धारा 4 तक की कोई बात— व्यावृत्तियां । (देखिए इंग्लैंड का 1935 का ऐक्ट) ।

(क) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसी संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता के लिये उसके पति को दायी नहीं बनाए जिसकी बाबत वह तब दायी नहीं होता यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता,

(ख) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसी संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता की बाबत दायित्व से (जो किसी अपकृत्य के करने से उत्पन्न ऋण या बाध्यता नहीं है) उसके पति को मुक्त नहीं करेगी जिसकी बाबत वह तब दायी होता **यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता,**

(ग) पति और पत्नी को संयुक्त रूप से या सामान्यिक अभिधारी के रूप में किसी सम्पत्ति के अर्जन, धारण या व्ययन से या किसी अपकृत्य संविदा, ऋण या बाध्यता के संबंध में संयुक्त रूप से स्वयं को दायी बनाने या बनाए जाने से और इसी रीति से अपकृत्य या संविदा में या अन्यथा वाद लाने या अपने विरुद्ध लाए जाने से निवारित नहीं करेगी मानो वे विवाहित नहीं हैं,

(घ) पति और पत्नी को दी गई संयुक्त शक्ति का प्रयोग करने से निवरित नहीं करेगी ।

6. (1) धाराएं 2 से 5 तक ऐसी किसी स्त्री को लागू नहीं होंगी जो अपने विवाह के समय हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म को मानती थी अथवा ऐसे विवाह के समय जिसका पति उन धर्मों में से किसी धर्म को मानता था । धारा 2 से धारा 5 तक का लागू होना ।

(2) शंकाओं के परिवर्जन के लिये, घोषित किया जाता है कि ऐसी विवाहित स्त्री जो अपने विवाह के समय हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म को मानती थी या ऐसे विवाह के समय जिसका पति उन में से किसी धर्म को मानता था—

(क) अपकृत्य में या संविदा में अथवा अन्यथा वाद लाने के लिये या वाद लाए जाने के लिये सक्षम होगी और उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि सदैव ऐसा था ; और

(ख) दिवाला से संबंधित विधि के तथा निर्णयों और आदेशों के प्रवर्तन के अधीन होगी और उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि सदैव ऐसा था,

मानो वह अविवाहित हो ।

(3) शंकाओं के परिवर्जन के लिये, यह भी घोषित किया जाता है कि ऐसी विवाहित स्त्री का पति, उसका पति होने के कारण ही—

(क) उसके (पत्नी के) द्वारा किये गये किसी अपकृत्य की बाबत चाहे वह विवाह के पूर्व या उसके पश्चात् किया गया हो, या

(ख) उसके (पत्नी के) द्वारा विवाह के पूर्व की गई किसी संविदा या उपगत किये गये किसी ऋण या बाध्यता की बाबत, या

(ग) ऐसे किसी अपकृत्य, संविदा, ऋण या बाध्यता की बाबत अपने विरुद्ध वाद लाए जाने या उस संबंध में की गई किसी विधिक कार्यवाही में पक्षकार बनाए जाने के लिये,

दायी नहीं होगा और न यह समझा जाएगा कि वह इस प्रकार कभी दायी था ।

7. उक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए हम यह सिफारिश करते हैं की धारा 6(1) के स्थान पर, निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएं । बीमा पालिसियां (वर्तमान धारा 6) ।

"(1) किसी विवाहित व्यक्ति द्वारा ली गई जीवन बीमा पालिसी जिसमें प्रत्यक्षत: यह अभिव्यक्त हो कि वह यह पॉलिसी उसकी पत्नी, या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के (फायदे के लिये है, उसकी पत्नी या उसके बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिये, इस प्रकार अभिव्यक्त हित के अनुसार, **एक न्यास सृजित करेगी** और जब तक कि न्यास के किसी उद्देश्य का निष्पादन किया जा सकता है और वह आनिष्पादत रहता है

तब तक उसके अधीन शोध्य रकम बीमाकृत व्यक्ति की संपदा का भाग नहीं होगी और न वह उस के ऋणों के अधीन होगी :

इंग्लैंड के 1882 के ऐक्ट की धारा 11 देखिए ।

परन्तु यदि यह साबित हो जाता है कि बीमाकृत व्यक्ति के लेनदारों को धोखा देने के आशय से पालिसी ली गई थी और प्रीमियमों का सदाय किया गया था तो उनको (लेनदारों को) पालिसी के अधीन संदेय रकम में से इस प्रकार संदत्त प्रीमियमों की रकम के बराबर रकम प्राप्त करने का हक होगा ।

(2) जहां किसी व्यक्ति द्वारा ली गई बीमा पालिसी में उस समय जब वह ली जाती है प्रत्यक्षतः यह अभिव्यक्त नहीं है कि वह उपधारा (1) में वर्णित व्यक्तियों में से किसी के फायदे के लिए है तो बीमाकृत व्यक्ति उस पालिसी के अस्तित्व में रहने के दौरान, किसी भी समय, अपने इस विनिश्चय की सूचना बीमाकर्ता को लिखित रूप में दे सकेगा कि पालिसी उसकी पत्नी या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिए होगी और बीमाकर्ता को ऐसी सूचना मिलने पर इस धारा के उपबंध यथाशक्य उसी रूप में लागू होंगे जिस रूप में वे उस पालिसी को लागू होते हैं जिसकी उपधारा (1) लागू होती है ।

(3) बीमाकृत व्यकित पालिसी द्वारा या किसी ज्ञापन द्वारा जिस पर उसने हस्ताक्षर किए हों पालिसी के अधीन शोध्य रकम के लिए एक या अधिक न्यासी नियुक्त कर सकेगा और समय-समय पर उसके लिये नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त कर सकेगा, तथा उसके लिए और किसी ऐसी किसी पालिसी के अधीन शोध्य रकम के विनिधान के लिए किसी नए न्यास या नए न्यासियों को नियुक्ति का उपबंध कर सकेगा :

(4) न्यासी की इस प्रकार नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर ऐसी पालिसी, उसके लिए जाते हो बीमाकृत व्यक्ति में और उक्त व्यक्तियों के लिए न्यासतः उसके विधिक प्रतिनिधियों में निहित होगी ।

(5) यदि, बीमाकृत व्यक्ति को मृत्यु के समय या उसके पश्चात् किसी समय कोई न्यासी न हो या कोई नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त करना समोचीन हो तो ऐसे किसी न्यायालय द्वारा जो भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के उपबंधों के अधीन अधिकारिता रखता हो, नए न्यासी या नए न्यासियों की नियुक्ति की जा सकेगी ।

(6) विधिवत् नियुक्त किए गए न्यास या न्यासियों के रसीद, या ऐसी किसी नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर अथवा बीमाकर्ता को सूचना देने में व्यतिक्रम होने पर, बीमाकृत व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि की रसीद से बीमाकर्ता पालिसी द्वारा प्रतिभूत रकम के लिए या उसक यथास्थिति, सर्म्पूण या आंशिक मूल्य के लिए, उन्मोचित हो जाएगा ।

स्पष्टीकरण 1—इस धारा के प्रयोजनों के लिए विन्यास पालिसी, जीवन बीमा पालिसी है ।

स्पष्टीकरण 2—उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट रीति में प्रदत्त फायदा समाश्रित हो या नहीं, इस धारा के उपबंध लागू होंगे ।

स्पष्टीकरण 3—इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व ली गई किसी ऐसी पालिसी के संबंध में जिसको यह धारा तब लागू हुई होती जब कि यह अधिनियम उस समय प्रवृत्त रहा होता, यह धारा विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1874 की धारा 6 के स्थान पर लागू होगी ।

छूट देने की शक्ति ।

8. (1) राज्य सरकार, समय समय पर, या तो इस अधिनियम के पारित होने की तारीख से भूतलक्षी रूप से या भविष्य लक्षी रूप से, किसी मूलवंश, पथ या जन जाति अथवा किसी मूल वंश, पंथ या जनजाति के भाग के उन सदस्यों को, जिन पर ऐसे उपबंधों को लागू करना वह ..... असमोचीन समझे[2] इस अधिनियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों के प्रवर्तन से छूट दे सकेगी।

(2) राज्य सरकार ऐसे किसी आदेश को प्रतिसंहृत भी कर सकेगी किन्तु इस प्रकार नहीं कि उस प्रतिसंहरण का भूत लक्षी रूप से कोई प्रभाव हो ।

---

1. 'अस्तित्व" शब्द की बजाय बीमा अधिनियम से कोई दूसरा शब्द लिया जा सकता है, यदि वह अधिक उपयुक्त हो ।
2. विद्यमान शब्द "असंभव" को अनावश्यक समझा गया और इसलिए उसे निकाल दिया गया है ।

(3) इस धारा के अधीन सभी आदेश और प्रतिसंहरण राजपत्र में प्रकाशित किये जाएंगे ।

9. 1974 के अधिनियम का निरसन––(धारा का प्रारूप तैयार नहीं किया गया) ।

10. अन्य अधिनियमों[1] का संशोधन––(संशोधन करने वाली धारा का प्रारूप तैयार नहीं किया गया) ।

---

1. बीमा अधिनियम, संम्पत्ति अंतरण अधिनियम, न्यास अधिनियम आदि के संशोधनों का उल्लेख अलग से किया गया है (रिपोर्ट का अध्याय 15) ।

परिशिष्ट 2

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की वर्तमान धाराएं 20 से 22 तक

विवाह द्वारा हितों और शक्तियों का अर्जित न होना और न उनका खोया जाना।

20. (1) कोई भी व्यक्ति, विवाह द्वारा, उस व्यक्ति की जिससे वह विवाह करता या करती है, सम्पत्ति में कोई हित अर्जित नहीं करेगा और न वह स्वयं अपनी सम्पत्ति के संबंध में कोई ऐसा कार्य करने के अयोग्य हो जाएगा जो वह तब कर सकता था या कर सकती थी यदि वह अविवाहित होता या होती ।

(2) यह धारा—

(क) 1866 की जनवरी के प्रथम दिन के पूर्व किये गये किसी विवाह को लागू नहीं होगी ;

(ख) किसी ऐसे विवाह को न तो लागू होगी और न उसकी बाबत यह समझा जाएगा कि वह उसे कभी लागू थी, जिसका एक या दोनों पक्षकार विवाह के समय हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म मानता था ।

भारत में अधिवसित व्यक्ति और भारत में अनधिवसित व्यक्ति के बीच विवाह का प्रभाव।

21. यदि वह व्यक्ति जिसका अधिवास भारत में नहीं है, भारत में ऐसे व्यक्ति से विवाह करता है जिसका अधिवास भारत में है, तो उनमें से कोई भी पक्षकार अन्य पक्षकार की किसी ऐसी सम्पत्ति में, जो विवाह के पूर्व किये गए व्यवस्थापन में समाविष्ट नहीं, विवाह द्वारा ऐसे कोई अधिकार अर्जित नहीं करता है जो वह उसके द्वारा तब अर्जित नहीं करता यदि दोनों पक्षकार, विवाह के समय, भारत में अधिवसित होते ।

विवाह को अनुध्यात करते हुए अवयस्क की सम्पत्ति का व्यवस्थापन।

22. (1) अवयस्क की सम्पत्ति का व्यवस्थापन विवाह को अनुध्यात करते हुए किया जा सकता है परन्तु यह तब जब कि वह व्यवस्थापन अवयस्क द्वारा अवयस्क के पिता के या यदि पिता की मृत्यु हो चुकी है या वह भारत से अनुपस्थित है तो उच्च न्यायालय के अनुमोदन से किया गया है ।

(2) इस धारा की या धारा 21 की कोई बात 1866 की जनवरी के प्रथम दिन के पूर्व की गई किसी विल को या घटित होने वाली निर्वसीयतता को अथवा किसी हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख या जैन की सम्पत्ति के निर्वसीयती या वसीयती उत्तराधिकार को लागू नहीं होगी ।

परिशिष्ट 3

मेरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (इंगलैंड) की धारा 11

"11. बीमा पालिसी के अधीन शोध्य धन का बीमाकृत की सम्पदा का भाग न होना। विवाहित स्त्री------- अपने स्वयं के जीवन पर या अपने पति के जीवन पर स्वयं अपने फायदे के लिये पालिसी ले सकती है, और वह तथा उसके सभी फायदे तदनुसार प्रवर्तित होंगे।

किसी व्यक्ति द्वारा ली गई उसकी जीवन बीमा पालिसी जिसमें यह अभिव्यक्त हो कि वह उसकी पत्नी या उसके बालकों या उसकी पत्नी और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिये है या किसी स्त्री द्वारा ली गई उसकी जीवन बीमा पालिसी जिसमें यह अभिव्यक्त हो कि वह उसके पति या उसके बालकों या उसके पति और बालकों या उनमें से किसी के फायदे के लिये है, उसमें नामित उद्देश्यों के पक्ष में न्यास का सृजन करेगी और ऐसी किसी पालिसी के अधीन शोध्य धन उस समय तक जब तक न्यास का कोई उद्देश्य अपूर्ण रहता है, बीमाकृत की सम्पदा का भाग नहीं होगा और न वह उसके ऋणों के अधीन होगा परन्तु यदि यह साबित हो जाता है कि बीमाकृत के लेनदारों को कपटवंचित करने के आशय से पालिसी ली गई थी और प्रीमियम दिये गये थे तो वे (लेनदार) पालिसी के अधीन शोध्य धन में से, इस प्रकार संदत्त प्रीमियमों के बराबर राशि पाने के हकदार होंगे। बीमाकृत, पालिसी द्वारा या अपने हस्ताक्षरयुक्त किसी ज्ञापन द्वारा और समय-समय पर उसका नया न्यासी या उसके न्यासी नियुक्त कर सकेगा तथा उसके नए न्यासी या न्यासियों की नियुक्ति का और ऐसी किसी पालिसी के अधीन शोध्य धन के विनिधान के लिये उपबंध कर सकेगा। न्यासी की इस प्रकार नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर, ऐसी पालिसी, उसके लिये जाते ही, बीमाकृत और उसके विधिक वैयक्तिक प्रतिनिधियों में उक्त प्रयोजनों के लिये न्यासतः निहित हो जाएगी। यदि बीमाकृत की मृत्यु के समय या उसके पश्चात् किसी समय कोई न्यासी न हो या नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त करना समीचीन हो तो ट्रस्टी ऐक्ट, 1850 या उसका संशोधन अथवा विस्तार करने वाले ऐक्टों के उपबन्धों के अधीन आधिकारिता रखने वाले किसी न्यायालय द्वारा एक या अधिक न्यासी अथवा नया न्यासी या नए न्यासी नियुक्त किये जा सकेंगे। सम्यक् रूप से नियुक्त न्यासी या न्यासियों की रसीद या ऐसी किसी नियुक्ति में व्यतिक्रम होने पर या बीमा कार्यालय को सूचना देने में व्यतिक्रम होने पर बीमाकृत के विधिक वैयक्तिक प्रतिनिधियों की रसीद से बीमा कार्यालय पालिसी द्वारा प्रतिभूत राशि या उसके सम्पूर्ण या आंशिक मूल्य के लिये निर्मोचित हो जाएगा।"

परिशिष्ट 4

ला रिफार्म (मैरिड विमेन एण्ड टार्टफीजर्स) ऐक्ट, 1935 (इंग्लैंड)

विवाहित स्त्री की क्षमता

1. इस ऐक्ट के इस भाग के उपबन्धों के अधीन रहते हुए (----------)[1], विवाहित स्त्री :—

(क) किसी सम्पत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन कर सकेगी ; और

(ख) किसी अपकृत्य, संविदा, ऋण या बाध्यता की बाबत स्वयं को दायी बना सकेगी और दायी बनाई जा सकेगी ; और

(ग) अपकृत्य में या संविदा में या अन्यथा वाद ला सकेगी या उस पर वाद लाया जा सकेगा ; और

(घ) दिवाला संबंधी विधि के और निर्णयों और आदेशों के प्रवर्तन के अधीन हर प्रकार से होगी, मानो वह अविवाहित स्त्री हो ।

विवाहित स्त्री की सम्पत्ति

2. (1) इस ऐक्ट के इस भाग के उपबंधों के अधीन रहते हुए, ऐसी सभी सम्पत्ति जो :—

(क) इस ऐक्ट के पारित होने के ठीक पूर्व किसी विवाहित स्त्री की सम्पत्ति थी या साम्या में, उसके पृथक् उपयोग के लिये धारित थी; या

(ख) इस ऐक्ट के पारित होने के पश्चात् किसी स्त्री की, उसके विवाह के समय हो; या

(ग) इस ऐक्ट के पारित होने के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा अर्जित की जाती है या उसे न्यागत होती है,

सभी प्रकार से उसकी होगी मानो वह अविवाहित स्त्री हो और तदनुसार उसका व्ययन हो सकेगा;

[परन्तुक तथा उपधाराएं (2) और (3), मैरिड विमेन (रेस्ट्रेन्ट अपान एन्टीसिपेशन) ऐक्ट, 1949 (अध्याय 78), धारा 1, अनुसूची 2 द्वारा निरसित]

अपकृत्य में तथा विवाह-पूर्व संविदाओं, ऋणों और बाध्यताओं में पत्नी के लिए पति के दायित्व का समाप्त किया जाना

पत्नी के अपकृत्य और विवाह के पूर्व की संविदाओं, ऋणों और बाध्यताओं के लिए पति के दायित्व का समाप्त किया जाना (देखिए 1935 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धरा 6) ।

3. धारा 3 के उपबन्धों के रहते हुए, किसी विवाहित स्त्री का पति, केवल इस कारण कि वह उस स्त्री का पति है—

(क) उस स्त्री द्वारा विवाह के पूर्व या बाद किये गये किसी अपकृत्य की बाबत या विवाह के पूर्व उसके द्वारा की गई किसी संविदा या लिये गये ऋण या बाध्यता की बाबत ; या

(ख) ऐसे किसी अपकृत्य, ऋण या बाध्यता की बात की गई किसी विधिक कार्यवाही की बाबत दावा किये जाने या पक्षकार बनाए जाने का,

दायी नहीं होगा ।

व्यावृत्तियां

4. (1) इस अधिनियम के इस भाग की कोई बात—

(क) पति आश्रय (कोवर्चर) के दौरान जो----------के----------वें दिन[2] के पूर्व आरम्भ हुआ है, ऐसी सम्पत्ति को छोड़कर जो साम्या में उसके पृथक् उपयोग के लिये धारित है, किसी सम्पत्ति को जिस पर किसी विवाहित स्त्री का हक (चाहे वह निहित या समाश्रित हो तथा चाहे वह कब्जे, उत्तरभोग या शेष भोग में हो) उस तारीख के पूर्व प्रोद्भूत हुआ है, प्रभावित नहीं करेगी ;

(ख) किसी अपकृत्य के संबंध में किसी विधिक कार्यवाही को तब प्रभावित नहीं करेगी जब कि उसके संबंध में कार्यवाही इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व संस्थित की गई हो ;

---

1. ये शब्द लॉ रिफार्म (हसबैण्ड एण्ड वाइफ) ऐक्ट, 1962 (अध्याय 48) धारा 3(2), अनुसूची द्वारा निरसित कर दिए गए हैं ।

2. विवाहित स्त्री सम्पत्ति अधिनियम, 1974 के प्रारम्भ होने की तारीख ।

(ग) इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व की गई संविदा अथवा उपगत ऋण या बाध्यता के संबंध में किसी विवाहित स्त्री के विरुद्ध किसी निर्णय या आदेश को दिवाला या अन्यथा उसकी सम्पत्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किये जाने के लिये समर्थ नहीं बनाएगी ।

(2) शंकाओं के परिवर्तन के लिये यह घोषणा की जाती है कि इस अधिनियम के इस भाग की कोई बात—

(क) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसी संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता के लिये उसके पति को दायी नहीं बनाए जिसकी बाबत वह तब दायी नहीं होता यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता ;

(ख) विवाह के पश्चात् किसी विवाहित स्त्री द्वारा की गई किसी ऐसे संविदा या उपगत ऋण या बाध्यता की दायित्व से (जो किसी अपकृत्य के करने से उत्पन्न ऋण या बाध्यता नहीं है) उसके पति को मुक्त नहीं करेगी जिसकी बाबत वह तब दायी होता यदि यह अधिनियम पारित न किया गया हो;

(ग) पति और पत्नी को संयुक्त रूप से या सामान्यिक अभिधारी के रूप में किसी सम्पति के अर्जन, धारण या व्ययन से या किसी अपकृत्य संविदा, ऋण या बाध्यता के संबंध में संयुक्त रूप से स्वयं को दायी बनाने या बनाए जाने से अपने विरुद्ध दावा लाने और इसी रीति से अपकृत्य या संविदा में या अन्यथा वाद लाने या अपने विरुद्ध वाद लाए जाने से निवारित नहीं करेगी मानो वे विवाहित नहीं है ;

(घ) पति और पत्नी को दी गई संयुक्त शक्ति का प्रयोग करने से निवारित नहीं करेगी ।

पारिणामिक संशोधन और निरसन

5. (1) इस ऐक्ट की प्रथम अनुसूची के प्रथम स्तम्भ में वर्णित अधिनियमितियां, उस अनुसूची के वित्तीय स्तम्भ में विनिर्दिष्ट संशोधनों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगी ।

[उपधारा (2)—एस० एल० आर० 1950 द्वारा निरसित ।]

परिशिष्ट 5

मैरिड विमेन (रेस्ट्रेन्ट अपान एन्टीसिपेशन) ऐक्ट, 1949 (इंगलैंड)

किसी स्त्री द्वारा सम्पत्ति के उपभोग से सम्बद्ध प्रत्याशा या अन्य संक्रामण पर किसी निर्बन्धन को अप्रवर्तनशील बनाने के लिए ऐक्ट

[16 दिसम्बर, 1949]

प्रत्याशा पर अवरोध की समाप्ति तथा पारिभाषिक संशोधन और निरसन

1. (1) प्रत्याशा या अन्य संक्रामण पर ऐसे किसी निर्बन्धन का जो किसी स्त्री द्वारा किसी सम्पत्ति के उपभोग से सम्बद्ध है या जिसका ऐसे सम्बद्ध होना तात्पर्यित है और जो किसी पुरुष द्वारा उस सम्पत्ति के उपभोग से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता हो, इस ऐक्ट के पारित होने के पश्चात् कोई प्रभाव नहीं होगा।

(2) पूर्वगामी उपधारा प्रभावी होगी चाहे उस ऐक्ट या लिखत के, जिसमें वह उपबंध है जिसके आधार पर सम्बद्ध किया गया था या उसका सम्बद्ध किया जाना तात्पर्यित था, के पारित होने, निष्पादन या प्रवृत्त होने की तारीख कुछ भी हो और तदनुसार ला रिफार्म (मैरिड विमेन एण्ड टार्टफीजर्स) ऐक्ट, 1935 की धारा 2 में उपधारा (1) और उपधाराओं (2) और (3) का परन्तुक (जो ऐसे निर्बन्धन के प्रवर्तन के विषय में, एक ओर, उस ऐक्ट के पारित होने के पूर्व पारित ऐक्ट या उक्त परन्तुक में उल्लिखित तारीख पूर्व निष्पादित लिखत और दूसरी ओर, उस तारीख को या उसके पश्चात् निष्पादित लिखत के बीच अन्तर करने वाला उपबंध करता है) इसके द्वारा निरसित किया जाता है।

(3) इस ऐक्ट की प्रथम अनुसूची के प्रथम स्तम्भ में वर्णित अधिनियमितियां उस अनुसूची के द्वितीय स्तम्भ में विनिर्दिष्ट संशोधनों के अधीन रहते हुए प्रभावी होंगे।

[उपधारा (4)—एस०एल०आर० 1953 द्वारा निरसित]

संक्षिप्त नाम और विस्तार

2. (1) इस ऐक्ट का संक्षिप्त नाम मैरिड विमेन (रेस्ट्रेन्ट अपान एन्टीसिपेशन) ऐक्ट, 1949 है।

(2) इसका विस्तार स्काटलैण्ड या उत्तरी आयरलैण्ड पर नहीं होगा।

अनुसूचियां

प्रथम अनुसूची

पारिणामिक संशोधन

मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 (45 और 46 विक्ट अध्याय 75)	धारा उन्नीस में, "or shall interfere" से "before marriage" तक के शब्द निरसित किए जाएंगे तथा जहां उक्त निरसित शब्दों के ठीक पश्चात् "and" शब्द आता है वहां उस के स्थान पर "but" शब्द रखा जाएगा।

[मैट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट, 1950 (अध्याय 25) धारा 34, अनुसूची द्वारा पैरा निरसित]

द्वितीय अनुसूची

[एस० एल० आर० 1953 द्वारा निरसित]

परिशिष्ट 6

ला रिफार्म (हस्बैंड एण्ड वाइफ) ऐक्ट, 1962 (इंग्लैंड)

(10 और 11 एलिजाबेथ 2, अध्याय 48)

पति और पत्नी के बीच सिविल कार्यवाहियों की बाबत विधि का संशोधन करने के लिए ऐक्ट।

[1 अगस्त, 1962]

पति और पत्नी के बीच अपकृत्य में अनुयोजन

1. (1) इस धारा के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, विवाह के प्रत्येक पक्षकार को दूसरे पक्षकार के विरुद्ध अपकृत्य के विषय में अनुयोजन का ऐसा अधिकार होगा मानो वे दोनों विवाहित न हों।

(2) जहां अपकृत्य के विषय में कोई अनुयोजन विवाह के एक पक्षक र द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध, विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान, चलाया जाता है वहां यदि प्रतीत हो कि—

(क) कार्यवाही को जारी रखने से किसी भी पक्षकार को कोई सारवान् फायदा नहीं होगा ; या

(ख) विवाद्यक प्रश्न या प्रश्नों का अधिक सुविधापूर्ण निपटारा मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882 की धारा सत्तरह (सम्पत्ति के हक या कब्जे की बाबत पति और पत्नी के बीच प्रश्नों का अवधारण) के अधीन आवेदन पर किया जा सकता है ;

तो न्यायालय उस अनुयोजन को रोक सकेगा और इस उपधारा के पैरा (ख) पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय ऐसे अनुयोजन के संबंध में ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग कर सकेगा जिसका प्रयोग उक्त धारा सत्तरह के अधीन किए गए आवेदन पर किया जा सकता हो, या ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह कार्यवाही में उत्पन्न होने वाले किसी प्रश्न के उस धारा के अधीन निपटारे के लिए ठीक समझे।

(3) न्यायालय से यह अपेक्षा करने के लिए कि वह कार्यवाही के आरंभिक प्रक्रम पर यह विचार करे कि इस धारा की उपधारा (2) के अधीन अनुयोजन को रोकने की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं ; न्यायालय के नियमों द्वारा उपबंध किया जाएगा तथा काउण्टी कोर्टस ऐक्ट, 1959 के अधीन बनाए गए नियम रजिस्ट्रार को उस उपधारा के अधीन न्यायालय की कोई अधिकारिता प्रदान कर सकेंगे ।

(4) इस धारा का विस्तार स्काटलैण्ड पर नहीं होगा।

पति और पत्नी क बीच उल्लंघन क संबंध में कार्यवाहियाँ

2. (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विवाह के प्रत्येक पक्षकार को दूसरे पक्षकार के विरुद्ध, सदोष या उपेक्षापूर्ण कार्य या लोप की बाबत या किसी सदोष कार्य के निवारण के लिए कार्यवाही करने का ऐसा अधिकार होगा मानो वे विवाहित न हों।

(2) जहां ऐसी कोई कार्यवाही, विवाह के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध, विवाह के अस्तित्व में, रहने के दौरान की जाती है वहां यदि यह प्रतीत होता है कि उसको जारी रखने से किसी भी पक्षकार को कोई सारवान् फायदा नहीं होगा तो न्यायालय कार्यवाही को खारिज कर सकेगा तथा न्यायालय का यह कर्तव्य होगा कि वह कार्यवाही के प्रारम्भिक प्रक्रम पर यह विचार करने की इस उपधारा के अधीन कार्यवाही को खारिज करने की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं।

(3) इस धारा का विस्तार केवल स्काटलैण्ड पर है।

संक्षिप्त नाम, निरसन, निर्वचन, व्यावृत्ति और विस्तार

(1) इस ऐक्ट का संक्षिप्त नाम ला रिफार्म (हसबैण्ड एण्ड वाइफ) ऐक्ट, 1962 है।

(2) इस ऐक्ट की अनुसूची में वर्णित अधिनियमितियां, उस अनुसूची के तृतीय स्तम्भ में विनिर्दिष्ट विस्तार तक इसके द्वारा निरसित की जाती है।

(3) इस ऐक्ट की धारा 1 की उपधारा (1) तथा धारा 2 की उपधारा (1) में विवाह के पक्षकारों के प्रति निर्देश के अन्तर्गत उन व्यक्तियों के प्रति निर्देश भी है जो ऐसे विवाह के पक्षकार थे जिसका विघटन हो गया है।

(4) यह ऐक्ट किसी ऐसे वादहेतुक को लागू नहीं होता है जो इस ऐक्ट के प्रारम्भ के पूर्व उत्पन्न हुआ था या विवाह के अस्तित्वशील रहने के कारण उत्पन्न हुआ होता।

(5) इस ऐक्ट का विस्तार उत्तरी आयरलैण्ड पर नहीं है।

अनुसूची

निरसित अधिनियमितियां

सैशन और अध्याय	संक्षिप्त नाम	निरसन का विस्तार
45 और 46, विक्टो अध्याय 75	मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882	धारा बारह, धारा तेईस—वहां तक छोड़कर जहां तक उसका संबंध दांडिक कार्यवाही से है
25 और 26 जार्ज अध्याय 30	ला रिफार्म (मैरिड विमेन एण्ड टार्टफीजर्स) ऐक्ट, 1935	धारा एक में "एण्ड सब्जैक्ट ऐज रिस्पेक्ट्स ऐकशन्स इन टार्ट बिटवीन हसबैण्ड एण्ड वाइफ टु दि प्राविजन्स आफ सैक्शन ट्वेल्व आफ मैरिड विमेन्स प्रापर्टी ऐक्ट, 1882"

78/M P(N)152MofLJ&CA—400—27-7-83—GIPS